CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दंडीस्वामी विमलानन्द सरस्वती
नं० 3 राजगुरु मठ
शिवालाघाट
वाराणसी

अक्तूबर-दिसम्बर, 1981 वर्ष 15, अंक 3

समीक्षा

सम्पादक : डॉ० गोपाल

परामर्श समिति

डा० विजयेन्द्र स्नातक : डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित

डा० रामचन्द्र प्रसाद : डा० वचनदेव कुमार

सम्पर्क

सी१/२, युनिवर्सिटी कॉलोनी, राजेन्द्र नगर, पटना-८०००१६

फोन : 51647

वार्षिक शुल्क : 25·00 मात्र : एक प्रति का मूल्य : 6·25 मात्र

प्रकाशन तिथि : 15 फरवरी, 1982

समीक्षित पुस्तकें / समीक्षक

समीक्षित पुस्तकें		समीक्षक
भूरी भूरी खाक : ग० मा० मुक्ति बोध	9	नन्दकिशोर नवल
उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष : शमशेर बहादुर सिंह	20	नन्दकिशोर नवल
इतने पास अपने : शमशेरबहादुर सिंह	27	नन्दकिशोर नवल
तुमने कहा था : नागार्जुन	34	प्रेमशंकर
खिचड़ी विप्लव देखा हमने	34	,,
शब्द जहाँ सक्रिय हैं (तुमने कहा था) : नागार्जुन	39	नन्दकिशोर नवल
जमीन पक रही है : केदारनाथ सिंह	49	रामवचन राय
कौन सा आकाश : सुनीता जैन	51	केदारनाथ सिंह
आदिम एकान्त : जगदीश गुप्त	54	रामवचन राय
जड़ों की आखिरी पकड़ तक : रवीन्द्र भारती	56	रामवचन राय
कई अन्तराल : विनय	59	भृगुनन्दन त्रिपाठी
चट्टानों का जलगीत : वेणु गोपाल	60	भारत भारद्वाज
वाणी की व्यथा : शिवमंगल सिंह 'सुमन'	62	हरदयाल
नरक को कभी शर्म नहीं आती : हरीश पाठक	64	सुधेश
वृत्त एक : बिन्दु अनेक : वचनदेव कुमार	66	जगदीश चन्द्र 'जीत'
बदलते भाव : उभरते स्वर : जगदीश चन्द्र 'जीत'	67	कृष्णचन्द्र लाल
तृष्णांकित : कुसुम कुमार	68	नीरजा टंडन
एक बूँद और : वेदप्रकाश वटुक	70	हरदयाल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋतु वृन्दावन : सुरेश श्रीवास्तव	71	कृष्णचन्द्र लाल
महामहिम चुप हैं : विनय दुबे	72	रामचन्द्र मालवीय
तृणवेणु : श्रीनिवास	74	शंकरदयाल सिंह
सुलगते पसीने : नचिकेता तथा शान्ति सुमन	75	वैद्यनाथ प्रसाद
एक वृत्त के चारों ओर : शान्ति जैन	76	वैद्यनाथ प्रसाद
मुट्ठीबन्द रहस्य : नरेन्द्र शर्मा	77	रणजीत कुमार साहा
कच्चे घर के लिये : राजकुमार कुम्भज	79	परमानन्द श्रीवास्तव
अपनी केवल धार : अरुण कमल	81	अपूर्वानन्द
शबरी : धनजंय अवस्थी	85	नीरजा टंडन
प्रतिज्ञा : देवनन्दन विकल	86	सुरेन्द्र स्निग्ध
कारागार : उर्मिला शास्त्री	87	महेशचन्द्र शर्मा
भीड़ से गुजरते हुए : कृष्ण कल्पित	88	शत्रुघ्न
धूप : फहमीदा रियाज	89	वैजनाथ राय
जमाने का कुतुबनुमा : अम्बिका भारद्वाज	90	अशोक भाटिया
सत्यासत्य : श्रीकृष्णराय 'हृदयेश'	91	मान्धाता राय
गंगा : राजेन्द्र शर्मा	92	वैजनाथ राय
अन्तिम निर्णय : विश्रान्त वशिष्ठ	92	महेशचन्द्र शर्मा
डूबते इतिहास का गवाह : जगदीश चतुर्वेदी	92	नन्दकिशोर नवल
धुएँ का सच : कुसुम अंसल	95	अमरनाथ सिन्हा

निवेदन

'समीक्षा' का यह अंक भी विलम्ब से प्रकाशित हो रहा है। इस विलम्ब का दोषी सम्पादक तो है ही, पटना के प्रेस और कुछ समीक्षकों की दीर्घसूत्रता का भी इसमें कम हाथ नहीं है। इसके लिए हम पाठकों के क्षमाप्रार्थी हैं।

अपने पाठकों, समीक्षकों, प्रकाशकों तथा विज्ञापनदाताओं को नये वर्ष का अभिवादन। विलम्ब इसमें भी हुआ है, जो क्षम्य है।

जनवरी, 1982 से हम 'समीक्षा' का वार्षिक शुल्क तीस रुपये कर रहे हैं। कागज, मुद्रण और व्यवस्था के खर्च में हुई वृद्धि के कारण यह शुल्क-वृद्धि अनिवार्य हो गयी है। आशा है, 'समीक्षा' के पाठक इस वृद्धि को स्वीकार कर अपना सहयोग पूर्ववत् देते रहेंगे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साहित्य

साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित दो नये उपन्यास

1. **चिराग** (तमिष् उपन्यास 'अगल विलक्कु')

प्रस्तुत उपन्यास इस शताब्दी के तीसरे दशक के तमिलनाडु के जीवन पर आँखों देखा दस्तावेज है। यह उपन्यास लेखक की आस्था तथा आदर्श को प्रतिबिंबित करता है। साथ ही यह उपन्यास एक जिज्ञासा को भी उत्पन्न करता है कि केवल मनोरंजन के उद्देश्य से कहानी पढ़ कर अपना समय नष्ट करने वाले शिथिल वर्ग को क्या यह उपन्यास विचारों की दुनिया में ले जाकर जीवन की बुनियादी समस्याओं के प्रति उनका ध्यान आकर्षित करेगा ? वास्तव में, प्रस्तुत उपन्यास बदलती दुनिया की रफ्तार के साथ मनुष्य को बदलने का भी सन्देश देता है।

श्री मु. वरदराजन के इस उपन्यास को 1961 में साहित्य अकादेमी ने पुरस्कृत किया था। इसका मूल तमिष् से हिन्दी में अनुवाद किया है तमिष् एवं हिन्दी भाषा के मर्मज्ञ श्री क. त. अ. कलैवाणन् ने। पृष्ठ 256, प्रथम संस्करण (1981) **मूल्य : 20·00**

2. **कानूरू हेग्गडिति** (कन्नड उपन्यास)

श्री कुवेम्पु (श्री के. वी. पुट्टापा) के प्रस्तुत उपन्यास का हिन्दी नाम 'कानूरू की चौधरानी' है। इस उपन्यास के बारे में लेखक की यह मान्यता है कि उनके इस उपन्यास को 'सावधानी से सचित, सजीव हो पढ़िये'। दरअसल उपन्यास इतना जीवंत है कि संवेदनशील पाठक उसे एक बार प्रारंभ कर पूरा पढ़ चुकने के बाद ही अपने से अलग करेगा।

श्री कुवेम्पु के इस उपन्यास को मूल कन्नड़ से सरल हिन्दी में अनूदित किया है कन्नड के लब्धप्रतिष्ठ मर्मज्ञ विद्वान श्री गुरुनाथ जोशी ने। पृष्ठ 518, प्रथम संस्करण (1981) **मूल्य : 30·00**

प्राप्ति स्थान

साहित्य अकादेमी

रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नयी दिल्ली-110001

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस अंक के समीक्षक

अपूर्वानन्द, बी० ए० अर्थशास्त्र (ऑनर्स) के छात्र, पटना कॉलेज, पटना (पृ० 81)

अमरनाथ सिन्हा, पी-एच० डी०, रीडर, हिन्दी विभाग, पटना वि० वि०, पटना (पृ० 95)

अशोक भाटिया, 18, गोविन्द नगर (मार्केट एरिया) अम्बाला छावनी (पृ० 90)

कृष्णचन्द्र लाल, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (पृ० 67, 71)

केदारनाथ सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (पृ० 51)

जगदीशचन्द्र जीत, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह रोड, नयी दिल्ली (पृ० 66)

नन्दकिशोर नवल, पी-एच० डी०, रीडर, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (पृ० 9, 20, 27, 39, 94)

नीरजा टंडन, पी-एच०डी०, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (पृ० 68, 95)

परमानन्द श्रीवास्तव, पी-एच०डी०, डी०लिट०, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (पृ० 79)

प्रेमशंकर, पी-एच० डी०, डी० लिट०, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (पृ० 34)

बैजनाथ राय, एम० ए० (हिन्दी), एफ 1/54, सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट क्वार्टर्स, नारकेल डाँगा, कलकत्ता (पृ० 89, 92)

भारत भारद्वाज, डी०सी० आइ० ओ० ऑफिस, बारामूला (कश्मीर) (पृ० 60)

भृगुनन्दन त्रिपाठी, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (पृ० 5९,

महेश चन्द्र शर्मा, 1/6453, पूर्वी रोहतास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32 (पृ० 87, 92)

मान्धाता राय, पी-एच० डी०, प्राध्यापक, स्वामी सहजानन्द महाविद्यालय, गाजीपुर (पृ० 91)

रणजीत कुमार साहा, पी-एच० डी०, हिन्दी पदाधिकारी, हिन्दुस्तान कॉपर लि० इन्डस्ट्रीज हाउस, (चौदहवीं मंजिल) 10, कामाक स्ट्रीट, कलकत्ता (पृ० 77)

रामचन्द्र मालवीय, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल (पृ० 72)

रामवचन राय, पी-एच०डी०, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (49. 54, 56)

वैद्यनाथ प्रसाद, पी-एच० डी०, रीडर, अँगरेजी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची (पृ० 75, 76)

शंकरदयाल सिंह, कामता सदन, बोरिंग कनाल रोड, पटना (पृ० 74)

शत्रुघ्न, पी-एच० डी०, रीडर, हिन्दी विभाग, किसान कॉलेज, सोहसराय (बिहार) (पृ० 88)

सुधेश, पी-एच० डी०, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली (पृ० 64)

सुरेन्द्र स्निग्ध, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (पृ० 86)

हरदयाल, पी-एच० डी०, डी०लिट, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, शाहदरा, दिल्ली (पृ० 62, 70)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पादकीय

कविता की वापसी

'पूर्वग्रह' के एक अंक में अशोक वाजपेयी ने 1980 को 'कविता की वापसी' का वर्ष कहा है। यह कथन इस अर्थ में सही है कि परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से इस वर्ष प्रकाशित कविता-पुस्तकें इस दशक के अन्य वर्षों में प्रकाशित कविता-पुस्तकों की तुलना में अधिक और महत्त्वपूर्ण हैं। इस दशक के पिछले नौ वर्षों में मौलिक कविता-पुस्तकों के प्रकाशन का औसत लगभग 50 है, जबकि इस वर्ष एक सौ से अधिक मौलिक कविता-पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। गुणात्मक दृष्टि से देखें तो विगत 9 वर्षों की लगभग 45 कविता-पुस्तकें (आवश्यक होने पर नाम गिनाये जा सकते हैं) पूरे दशक के परिप्रेक्ष्य में कमोवेश साहित्यिक चर्चा और विवेचन का विषय बन सकती हैं—जिनका औसत प्रतिवर्ष 5 पड़ता है—जबकि 1980 में प्रकाशित लगभग दो दर्जन पुस्तकें 'कविता' की दृष्टि से उल्लेखनीय समझी जा सकती हैं। इस वर्ष प्रकाशित कविता-पुस्तकों में गजानन माधव मुक्तिबोध कृत 'भूरी भूरी खाक धूल', नागार्जुन कृत 'तुमने कहा था' और 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', त्रिलोचन कृत 'ताप के ताये हुए दिन', केदारनाथ सिंह कृत 'जमीन पक रही है', शमशेर बहादुर सिंह कृत 'उदिता' और 'इतने पास अपने', जगदीश गुप्त कृत 'आदिम एकान्त', वेणु गोपाल कृत 'चट्टानों का जलगीत', राजकुमार कुम्भज कृत 'कच्चे घर के लिए', अरुण कमल कृत 'अपनी केवल धार', मलयज कृत 'अपने होने को अप्रकाशित करता हुआ', कुमार विकल कृत 'एक छोटी सी लड़ाई', राजेश जोशी कृत 'एक दिन बोलेंगे पेड़', जगदीश चतुर्वेदी कृत 'डूबते इतिहास का गवाह', विष्णुनागर कृत 'तालाब में डूबी छह लड़कियाँ', चन्द्रकान्त देवताले कृत 'लकड़बग्धा हँस रहा है', भवानीप्रसाद मिश्र कृत 'शरीर, कविता, फसलें और फूल', उदय प्रकाश कृत 'सुनो करीगर' आदि किसी न किसी रूप में, उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

यह तथ्य महत्त्वपूर्ण होते हुए भी कि 1980 में कविता-पुस्तकों का प्रकाशन काफी बड़ी संख्या में हुआ है, यह मानने को जी नहीं होता कि कविता के पनपने और फलने फूलने के लिए कोई विशेष समाजशास्त्रीय भूमि तैयार हो गयी है या कि हो रही है। हिन्दी में कविता के पाठक बहुत कम हैं, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि अधिकांश कवियों को अपने कविता-संग्रह खुद के पैसे से या अपने व्यक्तिगत प्रभाव से प्रकाशित कराने पड़ते हैं। हिन्दी का प्रकाशक बहुत ललक के साथ कविता-पुस्तकों की ओर आकृष्ट होता हो, इसकी पुष्टि हमारे व्यक्तिगत अनुभव से तो नहीं होती। पर 1980 में हिन्दी के, विशेष कर दिल्ली के, अनेक प्रकाशकों ने कविता-पुस्तकों के प्रकाशन में रुचि ली है तो इसका प्रमुख कारण कदाचित् यह है कि मध्यप्रदेश सरकार ने श्री अशोक वाजपेयी की संस्तुति पर इस वर्ष प्रकाशित अनेक कविता-संग्रहों के लगभग पूरे प्रथम संस्करण अपने पुस्तकालयों के लिए क्रय कर लिये हैं। जैसी सूचना है, इनके प्रकाशकों को कविता-पुस्तकों के प्रकाशन के पहले ही उनकी हजार हजार प्रतियाँ क्रय किये जाने का आश्वासन प्राप्त हो चुका था। निश्चय ही हिन्दी कविता के लिए यह सौभाग्य की बात है कि उसे एक हिन्दी प्रेमी राज्य सरकार का इतना बड़ा संरक्षण प्राप्त हो रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि हिन्दी 'कविता की वापसी' केवल इस अर्थ में होती कि किसी वर्ष विशेष में एक सौ से अधिक कविता-पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं तो कदाचित् इस पर हमारा अधिक ध्यान नहीं जाता। पर 1980 में प्रकाशित कविता-पुस्तकें हिन्दी कविता में एक स्वस्थ प्रवृत्ति के शक्त रूप में लौटने या मुखर होने के तथ्य को रेखांकित करती हैं। लगभग तीस वर्षों तक प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद, नयी कविता और अकविता के नाम पर हिन्दी कवियों का एक बहुत बड़ा समुदाय कविता को जीवन से विच्छिन्न, आम आदमी के सुख-दुःख से अलग, उच्चतर मानवीय मूल्यों तथा मनुष्य के महत्त्व और मर्यादा के लिए संघर्ष से विरत कर बीमार मन की कुंठाओं, तथाकथित खंडित संवेदनाओं, काम भावना के गुंजलकों तथा अवसाद, निराशा, अकेलापन आदि से जोड़ कर उसका निरन्तर अवमूल्यन करने की साजिश में संलग्न था। यों तो लगभग 1975 से ही यह साजिश टूटती हुई सी दिखाई पड़ती है, पर 1980 में एक साथ नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह आदि पुराने मँजे हुए प्रगतिशील कवियों तथा वेणु गोपाल, कुमार विकल, अरुण कमल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, आदि अपेक्षाकृत युवा और नये कवियों ने हिन्दी कविता को उसकी सही और जातीय जमीन पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास की उल्लेखनीयता इस बात में है कि जहाँ प्रयोग-प्रपद्य-नया कविता या अकवितावादी कवि कविता को निरन्तर पाठकों से दूर करते जा रहे थे वहाँ ये कवि कविता को जनता के बीच प्रतिष्ठित कर रहे हैं। इसका परिणाम इस रूप में दिखाई पड़ रही है कि प्रकाशक इस प्रकार के कविता-संग्रहों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। 1981 में जो कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उन्हें प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। 'कविता की वापसी' पद की यदि कोई सार्थकता है तो इसी अर्थ में।

प्रस्तुत अंक में हमने 1980 में प्रकाशित कविता-पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित की हैं। खेद है कि कुछ प्रकाशकों की उदासीनता के कारण इस अंक में कई महत्त्वपूर्ण कविता-संग्रहों की समीक्षाएँ प्रकाशित नहीं हो पायी हैं। फिर भी इस अंक में जो समीक्षाएँ प्रकाशित की गयी हैं वे हिन्दी कविता में आये नये मोड़ को भलीभाँति रेखांकित करती हैं।

'समीक्षा' के इस अंक में हमने डॉ० नन्दकिशोर नवल, डॉ० प्रेमशंकर, डॉ० हरदयाल, डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव आदि 'समीक्षा' के सुपरिचित समीक्षकों के साथ साथ डॉ० केदारनाथ सिंह, डॉ० रामवचन राय, भृगुनन्दन त्रिपाठी, भारत भारद्वाज, डा० नीरजा टंडन, शंकरदयाल सिंह, डा० वैद्यनाथ प्रसाद, सुरेन्द्र स्निग्ध, अपूर्वानन्द आदि 'समीक्षा' के समीक्षक-परिवार के नये सदस्यों की समीक्षाएँ भी प्रकाशित की हैं। इनमें डॉ० केदारनाथ सिंह और डॉ० रामवचन राय तो हिन्दी समीक्षा के जाने माने और परिचित हस्ताक्षर हैं, पर शेष (शंकरदयाल सिंह को छोड़ कर) हिन्दी समीक्षा के नये हस्ताक्षर हैं। इनमें अपूर्वानन्द तो पटना कॉलेज के बी० ए० (अर्थशास्त्र) के छात्र हैं, पर इनकी समीक्षा को पढ़ कर कदाचित् कोई इस पर विश्वास न करे। इस प्रकार नये पुराने समीक्षकों को एक साथ मंच पर लाकर 1980 की हिन्दी कविता को समझने का यह प्रयास सार्थक होगा, ऐसी आशा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देश के भावी नागरिकों का निर्माण हमारा राष्ट्रीय दायित्व है। उनके लिए सुन्दर सुरुचिपूर्ण, उपयोगी एवं सस्ती पुस्तकें उपलब्ध कराना हमारा उद्देश्य है।

बिहार स्टेट टेक्स्ट बुक पब्लिशिंग
कारपोरेशन लि०
ह्वाइट हाउस, बुद्ध मार्ग,
पटना—800 001

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

OUR PUBLICATIONS

ENGLISH

नवम एवं दशम वर्गों के लिए

Free India Structural English Grammar —Basudeo Singh
Free India Matriculation Grammar with Structures (Hindi, Urdu & Bengali) —S. Sinha
Free India Matriculation English Translation (Hindi, Urdu & Bengali) —Sakal Sinha
Free India Matriculation Essays, Letters & Composition —Sakal Sinha
Free India Structural Composition —S. D. Sinha

अष्टम वर्ग के लिए

Free India Structural English Grammar & Composition Part II —Dr. K. P. Thakur; Basudeo Singh
Free India Junior English Grammar & Composition —S. Sinha
Free India Simple English Grammar —S. Lal
Free India Junior English Translation —S. Sinha
Free India Simple English Translation —S. Lal
Free India English Essays & Letters —S. Lal

सप्तम वर्ग के लिए

Free India Structural English Grammar & Composition —Dr. K. P. Thakur, Basudeo Singh
Free India Junior Grammar & Composition —S. Sinha
Free India Simple Grammar & Composition —S. Lal
Free India Simple English Translation —S. Lal
Free India Junior English Translation —S. Sinha
Free India Essays & Letters —S. Lal
Practical English Essays —Dr. K. P. Thakur

षष्ठ वर्ग के लिए

Free India Simple English Translation —S. Lal
Free India Junior English Translation —S. Sinha
Free India Essays & Letters —S. Lal
Practical English Essays —Dr. K. P. Thakar

चतुर्थ एवं पंचम वर्गों के लिए

Deepak English Grammar (Hindi & Bengali) —B. Sharma
Deepak English Translation (Hindi & Bengali) —B. Sharma
Practical English Essays —Dr. K. P. Thakur

Lakshmi Pustakalaya
Patna-4

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूरी भूरी खाक धूल : मालव निर्झर की झर झर कंचन रेखा[1]

नन्दकिशोर नवल

'भूरी भूरी खाक धूल' मुक्तिबोध की कविताओं का दूसरा संकलन है। उनके पहले संकलन 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में मुख्यत: 1959 ई० से 1964 ई० के बीच लिखी गयी उनकी कविताएँ संकलित हैं, जबकि इस संकलन में संकलित कविताओं का रचनाकाल प्राय: 1949 ई० से लेकर 1963-64 ई० तक फैला हुआ है। इसके अलावा 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में जहाँ कुल अट्ठाईस कविताएँ ही संकलित हैं, वहाँ 'भूरी भूरी खाक धूल' में संकलित कविताओं की संख्या सैंतालीस है। इसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप यह संकलन हमें मुक्तिबोध के काव्य-संसार का परिचय पूर्णतर रूप में देता है।

मुक्तिबोध के बारे में अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे ऐसा लग सकता है कि उनकी कविताओं में 'ऑल स्ट्रगल' ही है और 'ऐरियाज ऑफ पीस' नहीं हैं, जबकि श्रेष्ठ कवि के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कविताओं में दोनों ही चीजें हों। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है : "साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को ग्रहण करने वाले कुछ ऐसे कवि भी होते हैं जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण। इसी प्रकार कुछ कवि या भावुक आनन्द के केवल सिद्ध स्वरूप या उपभोग पक्ष में ही अपनी वृत्ति रमा सकते हैं। उनका मन सदा सुख-सौन्दर्यमय माधुर्य, दीप्ति, उल्लास, प्रेम, क्रीड़ा इत्यादि के प्राचुर्य ही की भावना में लगता है।' (चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० 214) वे इस प्रकार के कवियों को पूर्ण कवि नहीं मानते। उन्होंने पहले ही लिखा है : 'कुछ कवि और भक्त तो जिस प्रकार आनन्द-मंगल के सिद्ध या आविर्भूत स्वरूप को लेकर सुख-सौन्दर्यमय माधुर्य, सुषमा, विभूति, उल्लास, प्रेमव्यापार इत्यादि उपभोग पक्ष की ओर आकर्षित होते हैं उसी प्रकार आनन्द मंगल की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण में भी—उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि की गति-विधि में भी पूरी रमणीयता देखते हैं। वे जिस प्रकार प्रकाश को फैला हुआ देखकर मुग्ध होते हैं उसी प्रकार फैलने के पूर्व उसका अन्धकार को हटाना देख कर भी। ये ही पूर्ण कवि हैं, क्योंकि जीवन की अनेक परिस्थितियों के भीतर ये सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं।' (उपर्युक्त) मुक्तिबोध ने भी लिखा है : 'बंजर काले-स्याह पहाड़ में भी एक अजीब वीरान भव्यता होती है, गली के अँधेरे में उगे छोटे से पौधे में भी एक विचित्र संकेत होता है।' ('नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध', पृ० 15) उनकी कविता में 'बंजर काले-स्याह पहाड़ की भव्यता' तो देखी गयी है, लेकिन उसमें 'गली के अँधेरे में उगे छोटे से पौदे' का संकेत अभी नहीं समझा गया। 'भूरी-भूरी खाक-धूल' इस दृष्टि से उनका विशिष्ट कविता-संग्रह है कि वह हमारा ध्यान उनकी कविता के कोमल

---

1. भूरी भूरी खाक धूल, ले० ग० मा० मुक्तिबोध, प्र० राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली2-, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 250, सजिल्द, मूल्य 30·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मधुर पक्ष की ओर ले जाता है। कठोर और कोमल, तिक्त और मधुर इन दोनों में कोई विरोध नहीं, बल्कि प्रगतिशील कवि के लिए गहरा सम्बन्ध है। जिस कवि की कविता एक ही 'अन्तर्निहित सागर की लहरें' हों, उसकी 'विरोधी' भाव वाली कविताओं में गहरा सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

'भूरी भूरी खाक धूल' की 'मालव-निर्झर की झर-झर कंचन रेखा' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध कहते हैं : 'माना कि जिन्दगी बदरंग विकृताकृति-सी है; / पर उसके दरिद्र परिदृश्यों के भीतर भी / वे मानवीय माधुर्य-अनुभवों की छवियाँ / जाने क्या-क्या कर सकती हैं, / दिल में मीठी ताकत-सी एक कसकती है, / व्यक्तित्व महकते रहते हैं।" जैसा संकेत किया गया है, आम तौर पर यह समझा जाता है कि प्रगतिशील कवि का हृदय तो पूँजीपति-वर्ग के प्रति घृणा से जलता रहता है, वह तो उसके प्रति क्रोध का प्रदर्शन करता है, वह तो उसके विरुद्ध संघर्ष में श्रमजीवी-वर्ग का प्रवक्ता होता है, फिर उसमें स्नेह और प्रेम जैसे कोमल भावों के निवास की गुंजायश कहाँ है। वास्तविकता यह है कि प्रगतिशील कवि का हृदय कोमल भावों से भरा होता है और जीवन तथा समाज में उन्हीं की स्थापना के लिए वह घृणा से जलता और क्रोध से उबलता हुआ उस वर्ग के विरुद्ध जेहाद छेड़ता है, जो उसमें बाधक होता है। एक अन्य कविता में मुक्तिबोध ने बिलकुल ठीक कहा है कि "क्रोध और व्यंग्य या / जहरीला संग वह अपने ही आप का, / आवश्यक महत्त्वपूर्ण मूल्यवान / संग वह भीतर के साँप का। / स्नेह की वेदना /घृणा की पीड़ा से वैर नहीं रखती है।" (' गीत') 'कंचन-रेखा' में भी उन्होंने कहा है कि ये कोमल मानवीय भाव ही हैं, जो सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणा देते हैं : "वे मानवीय माधुर्य अनुभवों की छवियाँ / यह कहती हैं—/ पार कर मुश्किलें सभी / जादुई अरुण कमल / उस दूर देश के रश्मि विकिरणशील सरोवर का / तुम ला देना, / एकाग्र प्रयत्नों का वह कोमल अमृत पिला देना, / सन्तापग्रस्त जीवन की दुर्निवार औषधि लानी होगी / यों मर मर कर जिन्दगी यहाँ पानी होगी···।" आगे वे कहते हैं : "बस इसीलिए / हम प्रिय-जन की / मृदु कृपा-दृष्टि या कोमल स्मित / के लिए तरसते रहते हैं, / इस कारण ही / व्यक्तित्व भव्यता /.जीवन-अनुशासन, समाज-परिवर्तन के / सपनों से कोमल रंग बरसते रहते हैं······।" पुराने मूल्यों से जकड़े हुए समाज में प्रेम हमें संघर्ष के लिए तैयार करता है और उसमें परिवर्तन का मतलब ही होता है 'कोमल रंगों की वर्षा'। मानव समता के सिद्धान्त पर आधारित समाज में ही जाति, धर्म, रंग और सम्पत्ति के बन्धनों को तोड़ कर प्रेम की स्थापना सम्भव है। यह आकस्मिक नहीं है कि मुक्तिबोध भव्य व्यक्तित्व, अनुशासित जीवन और समाजवादी समाज की कल्पना करते हैं, तो उनमें उन्हें 'कोमल रंग बरसते' दिखलाई पड़ते हैं। उनके लिए क्रान्ति की सार्थकता ही इस बात में है कि मनुष्य मनुष्य के बीच मधुर सम्बन्ध विकसित हों। जैसे विस्फोटक से चट्टानों को उड़ा कर पहाड़ी इलाके में कुआँ खोदा जाता है, वैसे ही समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर संघर्षरत लोग मधुर सम्बन्धों को जन्म देते हैं : "···विस्फोटों द्वारा ही / मेरे जन खनते रहते, इन्सानी मिठास / के नये नये / तालाब कुएँ / मानव-सम्बन्धों के आशय अमृत-स्वरूप।" इस तालाब, कुएँ अथवा झील के जल का मुक्तिबोध ने जो वर्णन किया है, वह दर्शनीय है : "उसका कितना मीठा पानी / मानो असंख्य अनदिखे अछूते फूलों का उसमें पराग / केशर का-सा ईमान-भरा, अनकहा गहन आत्मीय राग / घुलता रहता।' स्वभावतः उन्होंने मनुष्य की कल्पना धरती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के रूप में और मनुष्यता की कल्पना उस पर आने और छाने वाले वसन्त के रूप में की है : 'धरती है मानव तो वसन्त मानवता है।' ('शक्ति के आकृत का घूँट') यहाँ 'वसन्त' स्पष्टतः प्रतीक है, जिसका मतलब है सौन्दर्य और प्रेम। उनमें यह सौन्दर्य और प्रेम संघर्ष से जुदा नहीं है, बल्कि उससे घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है, यही उसकी विशेषता है। मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख' शीर्षक कविता में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है : 'प्रेम, राग-रागिनी, युद्ध / सब, एक साथ एक ओर पंक्तिबद्ध चलेंगे और गूँजेंगे'। 'बिना तुम्हारे' शीर्षक कविता में उनका आत्मकथ्य है : 'यद्यपि मेरे मुँह पर होगा / धूप के बवंडर का पल्ला / या सभी तरफ से एक साथ / होगा वीरानी का हमला / फिर भी सूनेपन के आईने में / चमकेगा लगातार / मेरी आँखों में रमे हुए / मीठे आकारों का निखार।" मुक्तिबोध की कविता में जो 'मीठे आकारों का निखार' है, उसकी ओर जब हमारा ध्यान जाता है तो हम यह पाते हैं कि छायावादोत्तर कविता में जिस तरह वे संघर्ष के सबसे बड़े कवि हैं, उसी तरह माधुर्य के भी।

जीवन और प्रकृति के मधुर चित्र 'भूरी भूरी खाक धूल' की कविताओं में यहाँ से वहाँ तक बिखरे हुए हैं। मुक्तिबोध की विशेषता यह है कि उन्होंने ये चित्र संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के बीच से ही उठाये हैं, उनसे बाहर से नहीं लाये। 'इसी बैलगाड़ी को' शीर्षक कविता में में किसान कहते हैं : "इस वक्त / परेशान हमने एक काम किया / रास्ते में एक ओर / कंडे की लाल आग / टिक्कड़ लगी सेंकने / बहुत बहुत परेशान थके हुए हम भी हैं।/ लेकिन सुगन्ध उस / टिक्कड़ की खूब जो कि / आत्मा में फैलती / ईमान की भाफ बन !!" ये किसान कठिन संघर्ष में पड़े हुए किसान हैं, जैसे उन्हें पहाड़ी चढ़ाव पर अपनी बैलगाड़ी ले जानी पड़ रही हो। इस संघर्ष में उनके जीवन में कभी कोमल क्षण भी आते हैं, जब रास्ते में रुक कर वे कंडे की आग में रोटियाँ सेंकते हैं और उनकी खुशबू उनके मन में भर जाती है। वे शोषकों के विरुद्ध जो संघर्ष चला रहे हैं उसमें उन्हें अपने परिजनों से काफी दूर चला जाना पड़ा है। वीरान में रोटियाँ सेंकते हुए आग की लपटों में उन्हें परिजन याद आते हैं : 'देखते हैं अग्नि में टिक्कड़ का सिकना / माया का ममता का सहज चमकना / याद आता / भाई बहन माता पिता पत्नी का / वियोग में तड़पना !!" 'कंचन-रेखा' एक प्रेम कविता है, जिसमें कवि अपनी प्रेमिका से कहता है : "जाने किस मिठास के उजले, सब पहचान रहे पल में उदार / तुम अकस्मात् यों व्याप गयी / क्षिप्रा-तट की ठडी बालू के सुप्रसार / को किरणों की ऊष्मा ही जैसे माप गयी। / झरने की झरझर कंचन-धारा अकस्मात् / पथ रोक गयी, पथ चीर गयी / झुरमुट तल की एकान्त गन्ध / मुझको छूकर / वासन्तिक विश्वासों की गहरी पीर हुई।" इसमें तीनो ही चित्र दर्शनीय हैं : नदी-तट के ठंडे बालू के फैलाव में सुबह की उष्ण किरणों का व्याप्त होना, स्वर्णिम जल वाले झरने का पथिक के रास्ते को रोक देना और झुरमुट से आने वाली गन्ध का मन में वसन्त ऋतु का पीड़ापूर्ण विश्वास जगा देना। 'शब्दों का अर्थ जब' शीर्षक कविता में हमें अनेक मधुर चित्र मिलते हैं। एक स्थल पर मुक्तिबोध ने उपमान के रूप में एक बहुत ही मधुर और कोमल चित्र अंकित किया है : "द्वार खोल देने को उठे हुए हाथों से / साँकल पर कम्पनमय कंगन की / संवेदित रोमांचित ध्वनियों-सा……।" इसी कविता में यह दूसरा चित्र भी अत्यन्त मनोरम है : "धूप-तपी राहों की / धूलिमय सफेदी में / एक जगह श्यामलता, / पेड़ तले छाया में बैठे हैं / होरी और धनिया / धनिया है नीलांचल / श्रम-सिक्ता श्याम-लता।' 'सूरज के वंशधर' शीर्षक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कविता में भी ऐसे अनेक चित्र हैं। इसमें एक स्थल पर मुक्तिबोध कहते हैं : 'मैदान में भीमकाय बरगद के पास इस / नीली धूप उठाती हुई और / उत्साह में सराबोर / (पास ही की बस्ती के) लड़कों की / खिलखिलाती कबड्डी / को देखता हुआ मैं......।" ज्ञातव्य है कि उन्होंने जिसे 'नीली धूप' कहा है, वह 'खिली हुई' चाँदनी है। चाँदनी में देखी गयी यह तसवीर "मुझे थाम लेती है / कि औंधे मुँह धड़ाम से गिरने से अँधेरी खाई में / लेती है बचा मुझे ...... ।" मुक्तिबोध जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते रहे, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि जीवन उन्हें इन चीजों से बिलकुल खाली मालूम पड़ा हो। यदि ऐसा होता तो यह बिलकुल स्वाभाविक था कि वे निराशावादी हो जाते और उन्हें जीवन में चतुर्दिक् कटुता और कुरूपता ही दिखलायी पड़ती। जीवन में माधुर्य और सौन्दर्य जिस मात्रा में दिखलायी पड़ता है, वह बहुत ही कम है, तथापि उसीके बल पर मुक्तिबोध जीवन को हद से ज्यादा प्यार करते रहे, निराशा का चित्रण करते हुए भी कभी निराश नहीं हुए और त्रास का चित्रण करते हुए भी कभी त्रस्त नहीं हुए। चाँदनी रात के मोहक वातावरण में जब वे बस्ती के लड़कों को कबड्डी खेलते देखते हैं, तो 'हँसते हुए चेहरों की आभाएँ दुर्दान्त / जिन्दगी का हँसता हुआ चाँद बन जाती हैं / कि जिसकी परछाई में / मन की रातरानी मेरी महक उठती अकस्मात् !!' उसके बाद उन्होंने जीवन के जो कुछ मधुर चित्र अंकित किये हैं, वे देखने ही लायक हैं :

दीखते हैं सभी ओर
बस्ती में झिलमिलाते दीए लग गये हैं
कि जिनके प्रकाश में
शायद कुछ विद्यार्थी कहीं पढ़ रहे हैं
कि कहीं कोई बहन अपनी भाभी के लिए
नीली साड़ी में रूपहली गोट-किनार लगा रही है
कि कहीं कोई पितृश्री
नाती को अपने क-ख-ग और पराँच पढ़ा रहे हैं
कि कहीं कोई बालक अपनी छोटी-सी गोदी में
शिशु छोटा भाई लिए तुतली-सी बोली में
कविताएँ गाते हुए उसे सुला रहा है...

जिस तरह मुक्तिबोध की कविता में अंकित जीवन के मधुर चित्रों की ओर अब तक हमारा ध्यान नहीं गया, उसी तरह उसमें अंकित प्रकृति के मधुर चित्र भी अब तक हमारी आँखों से ओझल रहे हैं। 'भविष्य-धारा' शीर्षक पहली कविता में उन्होंने प्रकृति का यह जो सूक्ष्म चित्र खींचा है, वह द्रष्टव्य है : "बिल्कुल सफेद / वह खिली हुई थी धूप ; / झाड़ियों की छायाओं के धब्बे / थे ऊँघ रहे / उस पिछवाड़े के जंगल में। / मानो सफेद झक कागज, / उस पर तसवीरें / दागों की ही। / वह हवा चल रही दबी-दबी।" धूप सफेद-झक कागज की तरह है, जिसमें झाड़ियाँ दागों की तरह लग रही हैं। हौले-हौले हवा चल रही है, जिससे झाड़ियाँ हिलती हैं। उनके हिलने से उनकी छायाएँ भी हिलती हैं। इससे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे ऊँघ रही हैं। 'मेरे युवजन, मेरे परिजन' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध ने रात्रिकाल में ओस की खुशबू का वर्णन किया है : "इस रात्रि-श्यामल वेला में / आगामी प्रान्तों की ओस सुगन्धित है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फूलों से मुक्तिबोध को खास मुहब्बत है। निम्नलिखित पंक्तियों में गुलाब, चम्पा और कुन्द इन फूलों का वर्णन अत्यन्त रमणीय है :

भूरे वीरान खँडहरों की ढूहों-खड्डों से कटी-पिटी
सुनसान भूमि में भी,
भीषण उदास टूटी भीतों के आसपास
गुंजान शून्य में भी,
ताजे गुलाब के फूल चमकते रहते हैं,
चम्पा की डालों में नीला आकाश फँसा रहता,
वन-मुग्ध कुन्द के तारे हमें देखते हैं।

हमारा ध्यान गुलाब की चमक, चम्पा की डालों में नीले आकाश के फँसे रहने और कुन्द के तारों जैसे दृष्टि-निक्षेप की ओर जाना चाहिए। इसी तरह मुक्तिबोध की कविताओं में कहीं 'शत-शिला-सन्धियों से उकसे पुष्पित लोचन' हैं ('कंचन-रेखा'), तो कहीं 'चन्द्र किरण-स्नात / वन-मंजरी बौराई नवल आम्रशाख' ('शब्दों का अर्थ जब'), कहीं 'मधुर चाँदनी से भरे / पथांकित अनाद्यन्त मैदान' हैं, तो कहीं 'धीरे उठा नील द्युति इन्द्र' ('पीत ढलती हुई साँझ')। कहीं कहीं मनुष्य और प्रकृति मिल गये हैं, जिससे अपूर्व मधुर चित्र की सृष्टि हुई है। उदाहरणार्थ 'गीत' शीर्षक कविता में :

समीर ने देखा न आव और ताव भी,
पूछा न नाम और गाँव भी,
मुझसे लिपट गया।
हाथों में थमी हुई
पुस्तक लुढ़क गयी।
अनाकार स्पर्श सब
मैत्री के सुलग गये !!
कमरे में झूम कर,
कुदकते बच्चों से प्यार कर,
अलकों में खेल कर,
पीले कपोलों से मेल कर,
भाभी के चरण छू, अँचल को झेल कर,
झूमा और नाचा वह,
बच्चों को थपियाया,
खूब शोर,
आनन्द का खूब जोर,
हँसी और कहकहे।
पत्नी के हाथ गहा,
उसका उच्छाह रोक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कानों में यह कहा—
"कमरे में बाहरी,
लिखना और पढ़ना है हो रहा,
शोर न करो, चुपचाप दवे पाँव
बच्चों के संग-संग
चौके में चले आव।"

मानना पड़ेगा कि मुक्तिबोध की कविता गीतात्मक तत्त्वों से भरपूर है। ये गीतात्मक तत्त्व उनकी कविता को एकरस नहीं होने देते। ये उसमें नयी स्फूर्ति का संचार करते रहते हैं, जिससे वह हमारे भीतर उतर कर हमसे गहरी आत्मीयता स्थापित कर लेती है।

मुक्तिबोध मूलतः चूँकि सामाजिक संघर्ष के कवि हैं, इसलिए 'भूरी भूरी खाक धूल' की कविताओं में मिलनेवाले ओज और करुणा के चित्रों के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही नहीं है। ओज और करुणा का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि मनुष्यता के प्रति करुणा का भाव नहीं हुआ, तो ओजस्विता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। मानव करुणा ही प्रगतिशील कवि को संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। मुक्तिबोध ने 'मुक्तिकामी पैरों की मोच की चीख' शीर्षक कविता में कहा भी है : "उलझी हुई जिन्दगी की / आई हुई दुखती हुई लाल आँख / मुझे भड़का देती है / देह से लिपटे हुए नागपाश भींचने / दिन के उजास में / किसी ध्रुव लक्ष्य की सपनों-भरी चिन्ताएँ सताती हैं / भीमतर प्रयास मेरे मन का / अहेरी की भयानक संयमित व्याकुलता / जगा देता प्राणों में / साहसी विजय हेतु।" वे जीवन की करुणाजनक स्थिति से अपने मन में उत्पन्न होने वाली व्याकुलता को 'अहेरी की भयानक संयमित व्याकुलता' कहते हैं। कारण यह कि वे मार्क्सवादी कवि हैं, जिससे उनमें अपने लक्ष्य को पहचान कर सावधानी से उस पर प्रहार करने का संयम है, अराजकतावादी बेचैनी नहीं। इस संघर्ष से उनकी कविता में वैसी ओजस्विता आयी है, जैसी तुलसी दास या फिर निराला में ही दिखलायी पड़ती है, हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं।

'भूरी भूरी खाक धूल' की कविताओं में जो कारुणिक चित्र मिलते हैं, वे दिल को हिला देने वाले हैं। ये चित्र कहीं प्रस्तुत रूप में आये हैं और कहीं अप्रस्तुत रूप में। 'शब्दों का अर्थ जब' शीर्षक कविता में ऐसे पिता हैं, जो बरसाती रातों में अपने ही पुत्रों से बेंतों से पीटे जाकर अपने ही मकान से निकाल दिये जाते हैं और फिर ऐसी जनता है, जिसे ढोर समझ कर उसकी घावों से भरी पीठ में चोंच मार कर गर्दन मटकाते दर्प-भरे कौए रक्त-भोज और मांस-भोज करते रहते हैं। 'जिन्दगी का रास्ता' में गरीबिनी माँ का बेचा हुआ पाँच वर्ष का ऐसा उदास बालक है, जिसे रोज मार खाते हुए काम करना पड़ता है और ऐसा क्रान्तिकारी राजनीतिक बन्दी है, जिसकी 'भूरी नंगी पीठ पर / पशुओं का जोश भरे / चाबुक के प्रहारों से / खींची गयी त्वचा की उछली हुई/लम्बी-लम्बी रक्तांकित रेखाओं के भिन्न-भिन्न रूप अरे !" इसी कविता में ऐसी विद्रोहिणी विधवा बहू है, जिसकी पीटी गयी पीठ पर बैठ कर सामन्ती घराने की जागीरदार बूढ़ी सास पिशाचिनी का प्रचंड रूप धारण कर स्वयं जबरदस्त हाथ में गरम गरम लोहे की शलाका लेकर उसकी पीठ दागती है। इन चित्रों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मुक्तिबोध सामन्ती-पूँजीवादी अमानवीय सामाजिक व्यवस्था से कितने पीड़ित थे। उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कविताओं में इस व्यवस्था के विरुद्ध जो ईमानदारी से भरा हुआ संघर्ष मिलता है, उनमें नयी व्यवस्था कायम करने की जो भयानक तड़प है, उसका राज उनकी मानव करुणा है, जो अज्ञेय जैसे कवियों की 'अंकुरित धरा से क्षमा / व्योम से झरी रुपहली करुणा' जैसी शौकिया करुणा से बिलकुल भिन्न है।

मुक्तिबोध की कविता में वक्तव्य भी है, लेकिन प्रमुखता उसमें चित्रों की है। उससे गुजरते हुए हमें ऐसा लगता है, जैसे हम एक विशाल चित्र-प्रदर्शनी से गुजर रहे हों। मुक्तिबोध को जो भी कहना होता है, वे चित्रों के माध्यम से कहते हैं। कभी वे वक्तव्य का सहारा लेते भी हैं, तो तुरत चित्रों पर आ जाते हैं। कभी कभी चित्र प्रस्तुत करने के बाद वे टिप्पणी करते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि चित्रों को अपनी अभिव्यक्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन मानते हुए भी वे बिम्बवादी कवि नहीं हैं। चित्र वक्तव्य की तुलना में अधिक प्रभावशाली होते हैं, यह जानी हुई बात है। मुक्तिबोध में माधुर्य और करुणा के जो चित्र मिलते हैं, उनकी बानगी हम देख चुके हैं। वे अन्य प्रकार के चित्र अंकित करने में भी उतने ही सक्षम हैं। विद्रूप यथार्थ को झेलने के बारे में वे कहते हैं : 'जहरीली नीली इस स्याही से / चेहरा यह धोया है।' ('ओ मसीहा') इसी तरह 'कंचन-रेखा' शीर्षक कविता में वे 'जिन्दगी की पगडंडी पर ठोकर लगने से पैर के अँगूठे के उखड़े नख में से बहते लाल ताजे खून तथा उसके तेज दर्द' का वर्णन करते हैं। 'पीत ढलती हुई साँझ' शीर्षक कविता में एक स्थल पर उन्होंने बड़ी व्याकुलता से कहा है : "कैसे जलाऊँ लगे जिन्दगी में / कठिन आपदा की / तर्तयों भरे घोर छत्ते·····।" अमंगलकारी, भयावह और क्रूरतापूर्ण दृश्यों का अंकन करने में तो मुक्तिबोध बेजोड़ हैं। भयावह अँधेरे का यह चित्र दर्शनीय है : "एक ओर / भयानक खड्ड और / एक मील नीचे का अँधियारा गहरा / जुगनुओं के नील ज्योति-बिन्दुओं से चमकता···।' ("इसी बैलगाड़ी को') इसी तरह यह चित्र भी : "हरहरा उठा यह पीपल तब / हँस पड़ा ठठा कर गर्जन कर गाँव का कुआँ।' ('इस नगरी में') 'भविष्य धारा' शीर्षक दूसरी कविता में मुक्तिबोध ने एक 'मूँछवाली डॉक्टरनी' का ज़िक्र किया है, जिससे मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी आत्मा में पलने वाले सत्य के भ्रूण की हत्या कराया करते हैं। 'बारह बजे रात के' शीर्षक कविता में यूरोप के एक रेस्त्राँ का वर्णन है, जिसमें "दुनिया की आत्मा की चीर फाड़ / करने के बाद ही / टेबुल पर बहती हुई लोहू की धार में / उँगलियाँ डुबो कर / खून की लकीरों से / देश-विदेशों की नयी-नयी / खूनी लाल खूनी लाल / सरहदें-सीमाएँ" बनानेवाले फौजी अफसर ऐश फरमाते हैं। उनकी ऐयाशी का यह दृश्य जितना वीभत्स है, उतना ही भयावह भी : "खूबसूरत दमकते रेस्तराँ में / कैप्टन के गरबीले / बैजों से बटनों से खेलते हैं सुकुमार / रंगे हुए नाखून / पैंटों के बटन चमकते-से लगते हैं / कामुक प्रकाश में।" 'सूखे कठोर नंगे पहाड़' शीर्षक कविता में मुक्तिबोध ने पूँजीपति वर्ग को एक तान्त्रिक का रूपक प्रदान कर यह चित्र अंकित किया है : "निज अन्धगुहा की छत में तान्त्रिक ने, असंख्य / आत्माएँ लटका दीं चिमगादड़ के समूह-सी उलटी···। / लटका नीचे सिर, ऊपर करके घृणित पैर / ढीले फैला कर रात्रि-श्याम / असगुनी पंख / उलटी लटकी हैं पराजिता दयनीया आत्माएँ असंख्य !!/ भूखे स्यारों की मलिन देह / में अगिन मानवात्माएँ कर दीं, हाय! कैद / जो इधर-उधर पशु रहे घूम / मुख को नत कर, वे श्वान और / अति वृद्ध सिंह / (सरकस के पशु) / भूखे शृगाल इत्यादि जीव···/ थे एक जमाने में ये भी मनुष्य, / पर थोड़े-से आराम हेतु, / अपनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्माएँ बेच, हाय !/ हो गए आज / काले तान्त्रिक की महादुष्ट जागीर घोर / के क्षुद्र जन्तु।" 'विक्षुब्ध बुद्धि के मारक स्वर' शीर्षक कविता के आरम्भ में पूँजीवादी सभ्यता में लोग जो स्वार्थी और व्यक्तिवादी हो गये हैं, उसका वर्णन इस चित्र के माध्यम से किया गया है, जो कि अत्यन्त सशक्त है : 'जिनके मुँह से/ प्रज्वलित गैस-सी साँस आग / वे बड़े करिश्मे वाले / गहरे स्याह /तिलिस्मी तेज बैल / तगड़े तगड़े / अपने अपने खूँटों से सारे बँधे खड़े / यह खूँटा··· स्वर्णधातु का है / स्वार्थिक ज्योति का है !! / आत्मिक प्रीति का है।'

मुक्तिबोध में हम वस्तु-वर्णन और दृश्य-चित्रण की क्षमता एक यथार्थवादी कथाकार की तरह पाते हैं। 'साँस रँगी ऊँची लहरों में' शीर्षक कविता में अवसरवादी बुद्धिजीवियों के बारे में वे कहते हैं : "स्वार्थान्ध सभ्यता की प्राचीरों के पथरीले तल समीप / की भूमि खोद / औ' नरम-नरम मिट्टी निकाल कर एक ओर / गह्वर-गह्वर में करते हैं आराम श्वान / ये रोज शाम / उद्ध्वस्त मुहल्लों की जमीन सूँघते हुए / फिरते रहते चिर-उदरंभरि ये कामचोर—/ अवसरवादी ये बुद्धिमान !!" 'ओ प्रस्तुत श्रोता' शीर्षक कविता में यह कारखाने का चित्र है : "सैकड़ों परिधियाँ / एक दूसरे के दाँतों में दाँत फँसा / जबड़े में जबड़ा डाल / घूमतीं गोल-गोल / निज केन्द्र मध्य के आसपास / हर बार वहीं की वहीं / और, वह उनका ऊँचा शोर / धुराधारी केन्द्रों का अपना खुद का जोर / नहीं कोई !!" 'भविष्य-धारा' शीर्षक कविता में एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला : "जल रहा गैस-स्टोव, पास, / सूना कमरा गहरा उदास / नीली अरुणिम लौ की कलिका / पर एक परीक्षण-नलिका वैसी की वैसी / यन्त्र पर रखी !!" 'शब्दों का अर्थ जब' शीर्षक कविता में कोयले की खान में काम करने वाली एक मजदूरनी द्वारा शिशु-प्रसव : "जाने कब कौन वहाँ / गरीबिन किसी पीतमुखी श्लथ-देही / माता ने, काम छोड़, / अलग हटा सिर पर से टोकरी / पाताली तल्ले में लेटकर / अकेले में निःसहाय / कष्टग्रस्त जीवन की / प्रतिभा प्रसूत की !!" 'जिन्दगी का रास्ता' शीर्षक कविता में पुराने महल का एक कमरा : "बल खाते चक्करदार ऊँचे-ऊँचे / जीने पर चढ़ते चले जाना है / कि जो चढ़नेवाले को देता है पहुँचा उस पुराने कमरे में / कि बरसों से जिसकी धूल झड़ी नहीं है—/ माना कि काँट है / लेकिन उसके लोहे की टाँग टूट गयी है, / माना कि मोटी एक गद्दी है उस पर / किन्तु कुछ चूहों ने कुतरते हुए स्थान-स्थान / सूनेपन की बास से भरे हुए / कपास के गुच्छे के गुच्छे / ऊपर निकाल दिये हैं, / माना कि कमरा कुछ बड़ा है / खिड़की है कि जिसमें से दूर का / क्षितिज-दृश्य दीखता है अब भी, / किन्तु वह कमरा तो है भुतहा/ कइयों ने किया वहाँ कामाचार, व्यभिचार / कइयों की कदाचित् / भीषणतम हत्याएँ हुई होंगी वहाँ पर / अहं, उदर और काम के / अनगिनत सर्ग और अध्याय / कमरे की वस्तुओं में, भीतों पर / दीखते हैं लिखे हुए।" मुक्तिबोध के काव्य-संसार में पुराने महल और उनके खँडहर अनिवार्य रूप से हैं। वे उन पर चाँद की कभी सफेद और कभी लाल-रोशनी डाल कर बड़ी कुशलता से वांछित दृश्य का निर्माण करते हैं। ऐसे दो दृश्य हैं :

कटी-कमर भीतों के पास खड़े ढेरों और
ढूहों में खड़े हुए खम्भों के खँडहर में
बियाबान फैली है पूनो की चाँदनी,
आँगन के पुराने-पुराने एक पेड़ पर।

['कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं']

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदित है स्तब्ध-भीम
वह लाल धधकता हुआ गोल अंगार-चन्द्र
स्वार्थान्ध सभ्यता की फूटी
इमारतों औ' मीनारों पर है रुधिर-क्रान्ति
वह रक्तारुण आलोक बिछा दीवालों पर
रँग गए बुर्ज और सिंहद्वार
जिनके अन्दर के प्रांगण का, भग्नान्तराल
का दिखता रहता अन्धकार
जो थी भूरी, रक्ताभ हो गयी हतश्वास
ढहती प्राचीरों के सिर पर वह उगी घास

['साँसरँगी ऊँची लहरों में']

मुक्तिबोध की कविता मुख्य रूप से चित्रात्मक है, जिसका मतलब यह है कि उनकी कल्पना-शक्ति अत्यन्त प्रबल है। इसी कारण हमें उनमें वस्तुओं और दृश्यों के न केवल वस्तु-चित्र मिलते हैं, बल्कि स्वप्नचित्र (फैन्टेसी) भी मिलते हैं। कभी कभी तो ऐसा लगता है कि उनकी शैली स्वप्न-चित्रों की ही शैली है। उनके स्वप्न-चित्रों की चर्चा भी काफी हुई है। स्वप्न-चित्र निश्चय ही उनकी अभिव्यक्ति के मुख्य साधन हैं। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि वे यथार्थ की जगह एक मिथ्या लोक की सृष्टि करना और उसमें अपने पाठकों के साथ आनन्द उठाते हुए रहना चाहते हैं। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि आखिर मुक्तिबोध ने स्वप्न-चित्रों को अपनी अभिव्यक्ति के साधन के रूप में इतना महत्त्व क्यों दिया? इसका उत्तर यह है कि अपने समय के यथार्थ को वे जिस तरह से उभार कर हमारे सामने रखना चाहते थे, वह अन्य विधि से सम्भव न था। कुछ विद्वानों के अनुसार उनमें अतिरंजना है, लेकिन यह आरोप बिलकुल गलत है। जैसा मुक्तिबोध ने स्वयं कहा है, 'क्योंकि पी जहर यह / क्योंकि जी जहर यह / सुन्न हुई नाड़ियाँ'; हम वस्तुतः संवेदनशून्य हो गये हैं, जिससे स्थिति की क्रूरता, भयावहता, अमानवीयता आदि को तीव्रता से अनुभव नहीं कर पाते। मुक्तिबोध असाधारण रूप से संवेदनशील कवि थे, उनके हृदय में 'सत्-चित्-वेदना' निरन्तर जलती रहती थी, इसलिए उन्होंने पूँजीवादी सभ्यता ने जिस अलगाव को जन्म दिया है, उसे उस तीव्रता से अनुभव किया, जिस तीव्रता से हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया है। स्वप्न-चित्रों ने गहरे अन्धकार और तीखे प्रकाश के मेल से उनके काव्य-संसार को वैसा बना दिया है, जैसा रंगमंच का संसार होता है। रंगमंच पर विभिन्न रंगों के प्रकाश में रँगे हुए जो दृश्य हमारे सामने उपस्थित होते हैं, वे जीवन और समाज के यथार्थ से भिन्न नहीं होते बल्कि उसे और उभार कर सामने रखनेवाले होते हैं। मुक्तिबोध की एक कविता में ये पंक्तियाँ आयी हैं: "जीवन के तथ्यों के / सामान्यीकरणों का / करना ही पड़ता हमें असामान्यीकरण"। ('इसी बैलगाड़ी को') यह बात उनकी कविता पर भी लागू होती है। जीवन के सामान्य तथ्यों को प्रबल रूप में उपस्थित करने के लिए यह जरूरी होता है कि उसे किंचित् असामान्यता या असाधारणता प्रदान की जाए। मुक्तिबोध ने स्वप्न-चित्रों के द्वारा सामान्य का असामान्यीकरण ही किया है। एक अन्य कविता में उन्होंने एक वातावरण का निर्माण करने के क्रम में ये पंक्तियाँ लिखी हैं: "सत्य में स्वप्न / स्वप्न में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्य / की मिली-जुली सम्मिश्र गन्धवाही बयार''। (कंचन-रेखा') उनकी कविता में स्वप्न-चित्रों के कारण वस्तुतः हमें स्वप्न में सत्य की और सत्य में स्वप्न की प्रतीति होती है।

कल्पना-शक्ति की प्रबलता, तीव्र संवेदनशीलता और आत्मपरकता देख कर कुछ विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कवि रूप में मुक्तिबोध की मानसिक बनावट रूमानी थी। यह किसी हद तक सही है, लेकिन हमें जानना चाहिए कि उनकी रूमानियत वैसी नहीं है, जो यथार्थ को छिपाए, या उसे विकृत करे। उनकी अनुभूति का एक वस्तुगत आधार है, जिसे वे कभी नहीं छोड़ते हैं। 'भूरी भूरी खाक धूल' की कविताओं में सामाजिक चेतना की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसके बारे में ऊपर किंचित् विस्तार के साथ लिखा गया है। उससे स्पष्ट है कि मुक्तिबोध की काव्यात्मक प्रतिक्रिया मात्र भावात्मक नहीं होती थी, बल्कि उसके पीछे मार्क्सवादी चिन्तन की सुदृढ़ भूमि थी। 'भविष्य-धारा' शीर्षक दूसरी कविता में उन्होंने एक स्थल पर कहा भी है : "कलाकार से वैज्ञानिक फिर वैज्ञानिक से कलाकार / तुम बनो यहाँ पर बार-बार''। उनकी कविता में वस्तुतः कला के सौन्दर्य और विज्ञान के सत्य तथा कलाकार सुलभ भावावेश और वैज्ञानिक सुलभ बौद्धिकता के बीच अदलाव-बदलाव निरन्तर चलता रहता रहता है। मुक्तिबोध की कविता में 'उदात्तता' है, जिसने उसे विराटता और ऊँचाई प्रदान की है। यह 'उदात्तता' बौद्धिक नियन्त्रण से परे की चीज नही है। 'उदात्तता' पर सर्वोत्कृष्ट चिन्तन प्रस्तुत करने वाले लोंजाइनस ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध में लिखा है : "उदात्त मनोवेगों की अभिव्यक्ति के मार्ग में बृहत्तर खतरे तब उपस्थित होते हैं, जब वे मनमाने ढंग से ज्ञान का आधार और स्थैर्य छोड़ कर प्रकट होने लगते हैं। प्रायः उन्हें प्रेरणा की आवश्यकता होती है, यह ठीक है, लेकिन प्रायः उन्हें नियन्त्रण की भी आवश्यकता होती है।" मुक्तिबोध की अभिव्यक्ति में जो अनगढ़पन है, वह उदात्तता के ही कारण। वे चूँकि उदात्त मनोवेगों के कवि थे, इसलिए अपनी अभिव्यक्ति को काट-छाँट कर नहीं रख सकते थे। यदि वे वैसा करते, तो उसकी भव्यता जाती रहती। वे जिस दौर में काव्य रचना कर रहे थे, वह वस्तुतः विशेष प्रकार की सौन्दर्यात्मक अभिरुचि का दौर था, जिसमें व्यवस्था और परिष्कार को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त था। उस दौर में उन्होंने लोकप्रियता और साहित्यिक स्वीकृति की परवाह न कर अपने लिए सर्वथा उपयुक्त भाषा में अपनी बात कही। इस प्रसंग में लोंजाइनस ने लिखा है : "कविता और गद्य में कौन चीज अधिक श्रेष्ठ है—वह भव्यता, जिसके साथ कुछ दोष भी लगे होते हैं, या यह शुद्धता, जो साधारण, पर हर तरफ से ठीक-ठाक और त्रुटियो से मुक्त प्रतीत होती है?" बाद में वे अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं : "अब मैं अच्छी तरह से यह जान गया हूँ कि सर्वोच्च प्रतिभा निर्दोषिता से बहुत दूर होती है, क्योंकि सम्पूर्ण शुद्धता में इस बात का खतरा रहता है कि वह क्षुद्र न हो जाए, जबकि भव्यतावाली पद्धति में कुछ चीजों की उपेक्षा अनिवार्य है। फिर यह भी निस्सन्दिग्ध है कि निम्न और मध्यम श्रेणी के व्यक्ति, जो कभी खतरे नहीं उठाते और कभी शिखरों पर पहुँचने का इरादा नहीं पालते, नियमतः त्रुटियों से अपेक्षाकृत मुक्त होते हैं, जबकि महान् सामर्थ्य वाले व्यक्तियों के आगे उनकी महानता के कारण ही हमेशा खतरा बना रहता है।" मुक्तिबोध की काव्यभाषा में छायावाद के अवशेष देखे गये हैं। इस सम्बन्ध में ज्ञातव्य यह है कि उन्होंने छायावादी कविता में प्रयुक्त शब्द लिये हैं, उसकी लाक्षणिक शैली नहीं ली। छायावादी कवियों की अप्रस्तुत-योजना और मुक्तिबोध की 'फैन्टेसी' में अन्तर है। मुक्तिबोध ने स्वयं 'कामायनी' को 'फैन्टेसी' कहा है, लेकिन वह पारिभाषिक अर्थ में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'फैन्टेसी' नहीं है, बल्कि 'एलिगरी' है, जबकि उनकी कविताओं में हमें 'फैन्टेसी' का बहुल प्रयोग मिलता है। उन्होंने आधुनिकतावाद से प्रभावित कवियों की तरह नकली मुहावरोंवाली भाषा नहीं गढ़ी और हिन्दी कविता की जो परम्परागत भाषा थी उसी को नयी अभिव्यक्ति क्षमता से युक्त कर उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया। निराला के बाद हिन्दी कविता की भाषा के जातीय रूप के विकास का यह दूसरा महान् प्रयास है। जो विद्वान् इस बात को नहीं समझते मुक्तिबोध की काव्य-भाषा को किसी हद तक छायावादी बतला कर उसका मूल्य कम करते हैं।

मुक्तिबोध ने अपने लिए सर्वथा उपयुक्त काव्य रूप का आविष्कार किया। वह काव्य-रूप है—लम्बी कविता। लम्बी कविताएँ हिन्दी में पहले भी लिखी गयी हैं, पर उनमें या तो कोई कथा होती थी, या किसी घटना या दृश्य का वर्णन। कुछ लम्बी कविताएँ ऐसी भी होती थीं, जिनमें कवि अपनी भावात्मक प्रतिक्रियाएँ या दार्शनिक चिन्तन प्रस्तुत करता था। मुक्तिबोध की लम्बी कविताएँ परम्परागत लम्बी कविताओं से गुणात्मक रूप से भिन्न हैं। सामाजिक अन्तर्विरोध उन कविताओं में भी किसी न किसी रूप और किसी न किसी मात्रा में अभिव्यक्त होते थे, खासकर निराला की कविताओं में, लेकिन मुक्तिबोध ने तो उनकी स्पष्ट समझ के साथ उन्हें अत्यन्त तीक्ष्ण और शक्त रूप में अभिव्यक्त करने के लिए लम्बी कविता का एक विधा के रूप में ही विकास किया। कथा-तत्त्व या घटना-वर्णन उनकी लम्बी कविताओं में भी हैं, लेकिन उनमें कुछ भी निर्धारित या पूर्व निर्धारित नहीं है, जिससे उनकी लम्बी कविताएँ खास तरह की लम्बी कविताएँ हो गयी हैं, जो कविता के किसी भी पुराने साँचे में फिट नहीं बैठतीं। कुछ आलोचकों के अनुसार उनकी कविताएँ नाटकीय एकालाप हैं। ऐसा इसलिए समझा जाता है कि मुक्तिबोध में प्रायः केवल अन्तर्द्वन्द्व या अन्तःसंघर्ष देखा जाता है। वास्तविकता यह है कि उनकी अनेक कविताएँ इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि उनमें केवल यही नहीं है। उनका अन्तःसंघर्ष भी सामाजिक संघर्ष का ही प्रतिफलन है, लेकिन वह प्रत्यक्ष रूप में भी उनकी कविताओं में प्रचुरता से अभिव्यक्त हुआ है। 'भूरी-भूरी खाक-धूल' में ऐसी अनेक कविताएँ संकलित हैं। 'ओ प्रस्तुत श्रोता' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा भी है ?

द्वन्द्व-स्थिति में स्थापित यह
मेरा वजनदार लोहा
उन भयंकर अग्नि-क्रियाओं में
तेज ढकेला जाकर
पिघलते हुए दमकते हुए
तेजःपुंज गहन अनुभव का छोटा-सा दोहा बनता है।

यहाँ 'द्वन्द्व स्थिति' से मतलब है 'सामाजिक द्वन्द्व स्थिति'। इससे गहरे लगाव के कारण मुक्तिबोध की कविताओं में एकालाप के अलावा संलाप भी मिलता है। उनमें वक्तृता के साथ कथा के भी तत्त्व हैं। जैसी विविधता उनकी विषय वस्तु में है, वैसी ही उनकी शैली में भी। मुक्तिबोध के सम्बन्ध में यहाँ हमें डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन पूरी तरह से सही प्रतीत होता है कि "ऊपर से अँधेरा अँधेरा दिखने पर भी उनकी कविता में बड़ी विविधता है।" उन्होंने यह भी कहा था कि "यदि कभी उनकी तमाम असंकलित कविताओं का संग्रह प्रकाशित होगा, तो इस विविधता की जानकारी और भी अच्छी तरह हो सकेगी।" (धर्मयुग, 28 दिसम्बर, 1969)। 'भूरी-भूरी खाक-धूल' के प्रकाशन से इस कथन की सत्यता सिद्ध हो गयी है●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदिता : नये इतिहास का पहला वरक[1]

नन्दकिशोर नवल

'उदिता' का प्रकाशन हाल में हुआ है, लेकिन इसमें शमशेर की 1937 ई० से 1947 ई० तक की कविताएँ संकलित हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उनकी काव्य-रचना का पहला दशक है। स्वभावत: इस अवधि में रची गयी उनकी कविताएँ उनके कवि-मानस की बनावट को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन कविताओं का महत्त्व एक दूसरी दृष्टि से भी है। वह यह कि ये कविताएँ हमें शमशेर के उस रचनात्मक संघर्ष से परिचित कराती हैं, जो उनके भीतर बहुत ही तीव्र रूप में चलता रहा है।

प्रगतिवाद के पहले दौर के कवि स्वयं छायावादी कवि थे, उदाहरण के लिए सुमित्रानन्दन पन्त, निराला, शिवमंगल सिंह 'सुमन' और नरेन्द्र शर्मा। उसके दूसरे दौर में उभरनेवाले कवियों में भी कइयों ने कमोवेश छायावाद का ही प्रभाव लेकर लिखना शुरू किया था। शमशेर की प्रस्तुत पुस्तक में संकलित अनेकानेक कविताओं में छायावाद का स्वर सुनाई पड़ता है। प्रमाण स्वरूप उनकी 'कवि कला का फूल हूँ मैं', 'आज हृदय भर-भर आता है', 'नव कवि का आह्वान', 'वाणी', 'सहन्-सहन् बहता है वायु', 'सजल स्नेह का भूषण केवल', 'कितनी करुणा का सागर', 'आज मई की शाम अकेली' आदि कविताएँ देखी जा सकती हैं। इन कविताओं में या तो छायावादी प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति हुई है, या प्रकृति-भावना की, या फिर संसार के प्रति मंगल-कामना की। इनकी शैली भी छायावादी है और अनेक स्थलों पर पन्त-निराला की शब्दावली की याद दिलाती है। पन्त का प्रभाव ऐसी पंक्तियों में प्रत्यक्ष है : "भर कठोरता अम्बर की। / कहती है वह कल्याणी / सागर का उच्छ्वास न भर, / ले दृढ़ मृदुता अन्तर की,/ शोषित प्राणों की वाणी।" इसी तरह अनेक पंक्तियों में निराला की शैली की अनुगूँज सुनाई पड़ती है : "सह विस्मय की चाप कठोर,/ सुन यह शोर। / मसृण समिद्ध शिला-उर-दर्पण / में लख वह घनघोर / वज्रायुध की जीवन-वर्षा / जिसमें तेरे तम का शोर। / चमक विहर पागल शिशु-सा, जग। / कवि के नर्तन-पद में गिर-गिर, / अमर विभोर !" निराला की शैली एक तरह की नहीं थी। कभी वे संस्कृतनिष्ठ और सामासिक शब्दावली में वाक्य-रचना करते थे और कभी प्रचलित और सरल शब्दावली में। शमशेर की छायावादी कविताओं पर निराला की दूसरी शैली का भी प्रभाव दिखलायी पड़ता है, 'जैसे उनकी मेरे अन्तर में भर जाती / केवल अपना करुणा राग : / वह अजान सुलगाती / क्यों नव यौवन में अबोध वैराग ?' जैसी पंक्तियों में। पहला उद्धरण जहाँ निराला की बादल-राग जैसी कविताओं की शैली का प्रभाव दिखलाता है, वहाँ दूसरा उद्धरण उनकी 'प्रिया के प्रति' जैसी कविताओं की शैली का ("एक बार भी यदि अजान के/ अन्तर से उठ आ जाती तुम, / एक बार भी प्राणों की तम / छाया में आ कह जातीं तुम / सत्य हृदय का अपना हाल···")। शैली ही नहीं, छन्द और लय के क्षेत्र में भी शमशेर छायावादी कवियों से प्रभावित थे।

---

1. उदिता : अभिव्यक्ति का संघर्ष, ले० शमशेर बहादुर सिंह, प्र० वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमलानगर, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 109, सजिल्द, मूल्य 28·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तुत पुस्तक की शमशेर ने जो छोटी-सी नयी भूमिका लिखी है, उसमें उन्होंने अपनी काव्य-रचना के आरम्भिक दौर के बारे में कहा है : "उस जमाने में मैंने अपनी घोर वैयक्तिक अनार्किक भावुकता, रोमानी आदर्शवाद से रचनात्मक संघर्ष शुरू कर दिया था, और मार्क्सवादी मॉडल प्रबल रूप से मुझे अपनी ओर खींच रहे थे। उर्दू कविता का शानदार प्रगतिशील उभार भी प्रभावित कर रहा था। धीरे-धीरे, मगर काफी धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आया। पर मेरी असली जमीन तो रोमानी ही थी, रोमानी बनी रही, जिसमें इकबाल और शैली का आदर्शवाद और निराला और रवीन्द्रनाथ के छायावादी या रहस्यवादी अद्वैत की छाया भी कहीं न कहीं शामिल थी। इसी प्रकार उन दिनों बहुत से प्रभाव मेरे भावुक व्यक्ति को ढाल रहे थे। मगर मैं अपने कवि को मात्र उन प्रभावों का पुंज नहीं मानता।" इसी कथन में दो तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि छायावाद के प्रभाव में काव्य-रचना करते हुए शमशेर उसकी रूमानी मानसिकता से मुक्त होने का भी प्रयास कर रहे थे; दूसरे, यह प्रयास वे प्रगतिवाद के प्रभाव से कर रहे थे, जिसमें उर्दू कविता का प्रगतिशील आन्दोलन उनकी सहायता कर रहा था और तीसरे, बावजूद इसके कि उनकी आरम्भिक कविता मूलतः रूमानी बनी रही, वह मात्र छायावादी प्रगतिवादी प्रभावों की अभिव्यक्ति नहीं है। हमने उन पर छायावाद का प्रभाव देखा है। शमशेर की 'जब वह क्षण आएगा', 'जीवन की कमान', 'भारत की आरती' आदि कविताओं पर प्रगतिवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप में दिखलायी पड़ता है। दूसरी कविता में उन्होंने कहा है : "टूटेंगे अरिदल के पहाड़ / के पहाड़, / जब जन-बल का सागर दहाड़ / कर उठेगा, / करता विचूर्ण फासिस्ट हाड़।" इसी तरह उन्होंने तीसरी कविता में राष्ट्रीय स्वाधीनता-प्राप्ति के अवसर पर यह कामना की है : "साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे। / साधिकार जनता उन्नत होवे, / जो समाजवाद जय पुकारती।" लेकिन जैसा उन्होंने स्वयं संकेत किया है, उनकी आरम्भिक कविता की विशेषता केवल छायावाद और प्रगतिवाद से प्रभावित होने में नहीं, बल्कि इन दोनों के प्रभावों के बीच से अपना निजी रास्ता बनाने में है। निजी कवि-व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शमशेर ने आरम्भ से ही जो प्रयास किया है, वह 'उदिता' की अनेकानेक कविताओं में प्रत्यक्ष है। यहाँ यह जान लेना जरूरी है कि निजी कवि-व्यक्तित्व का मतलब यह नहीं है कि वह सर्वथा निजी होता है और उसमें परम्परागत तथा समकालीन कविता का कोई तत्त्व नहीं होता। शमशेर ने पूर्ववर्ती और समकालीन कविता के अनेक स्वस्थ और प्रगतिशील तत्त्वों को समेट कर निजी कवि-व्यक्तित्व को उपलब्ध करने की साधना की। उन्होंने उन तत्त्वों को आत्मसात् कर उनमें बहुत कुछ जोड़ते हुए और उनमें से बहुत कुछ घटाते हुए उन्हें इस प्रकार कविता में अभिव्यक्त किया कि वे नयी आभा से जगमगा उठे।

'उदिता' की जिन कविताओं में शमशेर अपने निजी कवि-व्यक्तित्व के निर्माण के लिए संघर्षरत प्रतीत होते हैं, वे हैं : 'आह्वान', 'मेरा झूठा मान', 'कमरे में आया', 'घिरते आकाश को', 'नील शिखर पर', 'इन्दु विहान', 'नवसूर्य', 'आधी रात', 'गाएँ' आदि। 'आह्वान' मातृ-प्रेम की कविता है, जिसमें कवि ने कहा है : "आओ मेरे पिता के गाने की धुन-सी / उमंग ! हड्डी-सी पुराने / युग की ! जिसमें बसा मेरी माँ का प्रेम ! / आओ ! / आओ भाव स्तब्ध भरी/ सन्ध्या में अलक्ष्य / स्वर्ग गाओं के तम सी/यहाँ मेरे उर में !" इन पंक्तियों में कई बातें लक्ष्य करने योग्य हैं। एक तो यह कि इनमें यौन-प्रेम की नहीं, बल्कि मातृ प्रेम की अभिव्यक्ति की गयी है;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरी यह कि इनमें माँ की स्मृति की उपमा खुदाई में निकलने वाली अस्थि से दी गयी है, जो जितनी सटीक है, उतनी ही सशक्त भी और तीसरी यह कि इनमें मन में स्मृति के घिरने को 'जो भाव-स्तब्ध भरी सन्ध्या में अलक्ष्य स्वर्ग गाओं के तम' के घिरने के माध्यम से मूर्त किया गया है, वह सूक्ष्म होते हुए भी रहस्यात्मक नहीं है। ऐसी बात नहीं है कि छायावाद में कल्पना ही कल्पना थी और यथार्थ के तत्त्व नहीं थे। छायावाद में भी यथार्थ के तत्त्व थे, लेकिन उन पर कल्पना हावी थी। शमशेर ने उन यथार्थ के तत्त्वों को लेकर ही अपनी निजी शैली विकसित की। कहीं उन्होंने वस्तु या भाव के बहुत सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत किये, तब भी उनकी कोशिश यही रही कि उन्हें अधिक से अधिक यथार्थ बनाया जाय। 'मेरा झूठा मान' उनकी यौन-प्रेम की कविता है, जो अपनी यथार्थवादिता के कारण ही छायावादी प्रेम-कविताओं से भिन्न है। उसकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं : "आएगी फिर शाम ? / कोई लाएगा फिर मेरे नाम / मेरा प्रेम / पत्र, आधा जीवन जिसका दाम ?" प्रकृति और सौन्दर्य से शमशेर का लगाव पुराना है। एक कविता में तो उन्होंने अपने कवि के बारे में कहा है : "जिसने जीवन के सम्मान / फूँक दिये आँगन में छवि के !" 'कमरे में आया' और 'घिरते आकाश को' इन दो कविताओं में कमरे में और आकाश में अन्धकार के घिरने का बहुत ही सूक्ष्म और लयात्मक वर्णन है। चित्र सूक्ष्म हैं और जिस गति से अन्धकार घिरता या फैलता है, उसी गति के अनुरूप कविता की लय है। यह ठीक है कि घिरते अन्धकार को कवि 'सूने घर में' और 'हताश' मनोदशा में देखता है, पर उसके वर्णन की सफलता इस बात में है कि वह अत्यन्त वस्तुपरक है। यह वर्णन छायावादी कवियों के सन्ध्यागमन के वर्णन की तुलना में निश्चय ही अधिक यथार्थवादी है। प्रमाणस्वरूप यहाँ पहली कविता पूरी उद्धृत की जा रही है :

कमरे में आया
शाम का कोमल अँधियाला :

दीवारों पर, छत पर—चुप-चुप
कुहरे-सा काला कुछ
उदास मन छाया।

मेरे सूने घर में
धीरे-धीरे डूबा
उसका मन।

मैं भी कहाँ कौन जाने कब
बैठा उस तम की मिट्टी में
उसके संग समाया।

'नील शिखर पर' और 'इन्दु विहान' प्रकृति-सौन्दर्य की दो अद्भुत कविताएँ हैं। पहाड़ की नीली चोटी रोशनी से चमक रही है। इस पर कवि का कहना है : "नील शिखर पर/किसके चरण-चिन्ह हैं दीप्त / नव नक्षत्र राशि से सुन्दर ? -/ सुरभित कर आकाश / अपनी शोभा में कर लीन / भुला रहे जो अगजग जीवन !" रोशनी क्या है, जैसे किसी के भास्वर चरण-चिन्ह हैं ! जब कवि को चरण की याद आती है, तो उसे चरण के लिए प्रयुक्त श्रेण्य उपमान 'कमल' भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

याद आता है। फिर तो कमल की सुरभि से सारा आकाश सुरभित हो उठता है। ऐसा ही सशक्त और रमणीय वर्णन 'इन्दु विहान' में भी देखने को मिलता है, जिसमें पश्चिम दिशा में सूर्यास्त हो रहा है और पूर्व दिशा में चन्द्रोदय :

—नील-तन गिरि श्रेणियों के उधर
झर रही है धूम-स्वर्णिम धूल...
ओढ़ श्याम दुकूल नभ से झाँकता है एक लोहित फूल।
मटिल नभ-तन हुआ।
पूर्व इन्दु-विहान...
घनों में छा-सा चला वह
क्षीण इन्दु-विहान।

मानना पड़ेगा कि शमशेर ने छायावादी सौन्दर्य-बोध को और अधिक सूक्ष्मता प्रदान की है और इस तरह उसे और विकसित किया है। ज्ञातव्य यह है कि यह उन्होंने सौन्दर्य को मनोगत नहीं, बल्कि वस्तुगत आधार प्रदान करके किया है। सौन्दर्य-चित्रण में हिन्दी कविता को यही उनकी देन है।

पुस्तक की संक्षिप्त भूमिका में, जिसका हवाला ऊपर दिया गया है, शमशेर ने कहा है : "प्रेम की भावुकता ने जो वीज बोया वह मैं देखता हूँ कि अकारथ नहीं गया : क्योंकि पूरी मनुष्य जाति से प्रेम, युद्ध से नफरत और शान्ति की समस्याओं से दिलचस्पी—ये सब बातें उसी से धीरे धीरे मेरे अन्दर पैदा हुईं।" यहाँ उन्होंने अपनी प्रेम भावना के सही दिशा में विकसित होने की ओर संकेत किया है। 'नवसूर्य' शीर्षक उनकी कविता प्रकृति को विषय बनाकर लिखी गयी है, लेकिन उसमें मनुष्य के प्रति करुणा भाव की अभिव्यक्ति देखते ही बनती है। प्रकृति और प्रेम भावना का यह उच्चतर रूप है। कवि सूर्य को ईसा का रूप प्रदान करते हुए इन शब्दों में उसका स्तवन करता है : "करों की असंख्य ही सलीबें / काट एक दूसरे को / आँखों के सम्मुख / उठती हैं फिर फिर अति / मधुर-मदिर मधुर-मदिर /—जय हो ! जय हो ! मेरे हे सूर्यख्रीष्ट। / हे अन्तिम / मानव करुणा अभीष्ट !" मानना पड़ेगा कि इन पंक्तियों में शमशेर के तीव्र मानव-प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है और इनमें जो सशक्त बिम्ब योजना है, वह उनके काव्य के नये स्तर पर पहुँचने की सूचक है। 'आधी रात' और 'गाएँ', 'उदिता' की क्रमशः यौन प्रेम और प्रकृति प्रेम की कविताएँ हैं, लेकिन ये महत्त्वपूर्ण हैं यथार्थ दृश्य चित्रण की दृष्टि से। इनमें से दूसरी कविता, जो छोटी है, पूरी उद्धृत की जा सकती है : "गाएँ मैली, सफेद, काली, भूरी / पत्थर ढुलके पड़े। पेड़ स्थिर नीरव। / दो पहाड़ियाँ धूम-विनिर्मित, पावन।" इसमें स्पष्टतः पहाड़ी इलाके का एक दृश्य अंकित किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें चार वस्तुओं का अंकन किया गया है और प्रत्येक का अंकन अत्यन्त यथार्थपरक है। पहाड़ियों के लिए कल्पना से एक उपमान लाया गया है, जो अत्यन्त सटीक है। पावन शब्द से पता चलता है कि धूम यज्ञ-धूम है। इससे वातावरण की पवित्रता का बोध होता है।

'मृत्यु का प्रस्तर खंड', 'शाम की मटमैली खपरैल', 'चिड़िया-सा छिपा-लुका मेरा मन', 'उठती है मतवाली' आदि कविताओं में शमशेर की निराशा और अकेलेपन की भावना की अभि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्त हुई है। इन कविताओं की शैली यथार्थवादी है (उदाहरण के लिए इस चित्र को देखा सकता है : "एक बुझा काला विशाल मार्तंड/कितने युगों से डूब रहा हूँ महाशून्य में"), लेकिन इन्हें सही अर्थों में यथार्थवादी कविताएँ नहीं कह सकते। कारण यह कि इनमें मध्यवर्गीय मन की निराशा और अकेलेपन की अभिव्यक्ति परिवेश से विच्छिन्न रूप में हुई है, जिसके स्वाभाविक परिणाम स्वरूप कवि ने मध्यवर्गीय दृष्टिकोण भी अपना लिया है। सम्पूर्ण छायावाद और नयी कविता का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा मध्यवर्ग की देन रहा है। नयी कविता में निराशा और अकेलेपन की भावना की जो धारा बहती रही है उसका सम्बन्ध उत्तर-छायावादी काव्य-परम्परा से है, शमशेर ने 'उदिता' के अन्त में दी गयी किंचित् विस्तृत भूमिका में इस बात का जिक्र भी किया है और उस धारा से अपने को अलग करने का उपाय भी बतलाया है। उन्होंने अपनी कविता पर निर्मम टिप्पणी करते हुए लिखा है : "इस कविता में जो कमजोरियाँ हैं वह चरित्र की हैं। यानी कवि के चरित्र की। मध्यवर्ग का कैरेक्टर है। और फिर आज का, नया, भी नहीं। जरा पिछला है···यानी, जो हिन्दी कविता में छायावाद के बाद आनेवाला, नरेन्द्र और बच्चन के अभाव और सोशल घुटन; और एक हद तक पलायन के अलावा जिन्दगी का कुछ जियादा टूटा-फूटापन और उखड़ा हुआ बहाव-सा लिए हुए है। उस बिचले तबके की जिन्दगी के भँवर खामोश, तेज होते हुए भँवर के चक्कर इस और ऐंसी कविता में मिलेंगे जिससे निकलने के लिए एक तिनके का सहारा सिर्फ सोशलिज्म ही आड़े आया। जी, वही **प्रगतिवाद का आन्दोलन**।" (जोर मूल में) लेकिन जैसा संकेत किया गया है, शमशेर की आरम्भिक कविता भी केवल छायावाद और प्रगतिवाद के प्रभावों से निर्मित नहीं है। उनके प्रगतिशील और सकारात्मक तत्त्वों को लेकर उन्होंने निरन्तर अपनी निजी काव्य-शैली विकसित करने का प्रयास किया है, जिसमें वे इतने सफल रहे हैं कि आज वे आधुनिक हिन्दी कविता में सर्वाधिक विशिष्ट कवि माने जाते हैं।

शमशेर की विशिष्टता, अथवा कहें विलक्षणता, उनके शिल्प में है। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उन्होंने शिल्प को अलग से महत्त्व दिया है और वह उनकी काव्य-वस्तु से स्वतन्त्र है। वास्तविकता यह है कि शमशेर के शिल्प का आधार उनकी वस्तु अर्थात् उनकी सूक्ष्म संवेदना ही है; उनकी कोशिश यह रही है कि मन के भावों को उसी रूप में कविता में प्रस्तुत कर दिया जाए, जिस रूप में वे मन में उठते हैं। इस कोशिश में वे उपन्यास और संगीत इन दोनों के तत्त्व स्वीकार कर चलने के पक्ष में रहे हैं। 'उपन्यास' से उनका मतलब रहा है शैली की मूर्त्तता से और 'संगीत' से उनका मतलब रहा है उसकी 'अमूर्तता' से। पुस्तक के अन्त में दी गई भूमिका में उन्होंने कहा है : "उसके दुख या सुख या खामोशी को, या खुशी या उम्मीद को, अगर मूल रूप में लगभग ज्यों का त्यों प्रकट किया जाय···उस तरह नहीं जिस तरह उपन्यास में कोशिश की जाती है, या जिस तरह संगीत की लय में, अलाप में हमको मिलती है। बल्कि उपन्यास और संगीत, कुछ दोनों के गुण लेकर···ऐसे शब्दों में उन्हें रख दिया जाय, जो अन्दर ही अन्दर उमड़ते-घुमड़ते हुए राग के बोल की तरह आप ही आप फूट पड़ते हों···।" मन में भाव जिस रूप में उठते हैं उस रूप में वे कभी कभी उलझे हुए होते हैं, अतः उनका उसी रूप में अंकन पूरी तरह से अमूर्त हो जा सकता है। शमशेर इस अमूर्तन के खतरे से परिचित हैं, इसलिए वे अन्य कवियों को आग्रह करते हुए उक्त भूमिका में ही कहते हैं : "अन्तश्चेतना के बुदबुदों के इन कमलों को अन्दर ही अन्दर खिलने देकर, जब तक हमारी चेतन बुद्धि की रोशनी में वह अच्छी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तरह खिलकर अपनी खुशबू न देने लगें, हमें उन भावनाओं की ओर जियादा एहतियात से परवरिश करनी चाहिए। उनकी अपनी अजीव अछूती लय और छन्द भी जवतक एक सधी हुई ताल के साथ अपने आप खुल कर न वोलने लगें, हमें उनके मोह से बचना चाहिए।" 'उदिता' में संकलित कविताएँ निश्चय ही अतिशय अमूर्तन से रहित कविताएँ हैं। इस संकलन के सम्वन्ध में कवि का यह दावा विलकुल सही है कि 'मैंने वगैर अपना स्वाभाविक अन्दाज और लहजा छोड़े हुए, धीरे-धीरे अपनी कविताओं को जियादा ठोस वनाने की कोशिश की है।' ध्यान देने की वात यह है कि इस वात को रेखांकित करना उसने खास तौर से जरूरी समझा है कि 'यह कोशिश असल में जिन्दगी को समाजी संघर्ष के मैदान में ले आने पर ही कामयाव हो सकती है।'

अज्ञेय ने अपनी 'अन्तःप्रक्रियाओं के तीसरे संकलन' 'शाश्वती' में शमशेर के बारे में लिखा है : "शमशेर चालीस वरस से हिन्दी में कविता कर रहे हैं, और हिन्दी ने उन्हें ग्रहण भी कर लिया है (कैसी दुःखद स्थिति है !—ले०)···पर वह मूलतः उर्दू के कवि हैं और रहे हैं। उनकी संवेदना और उनका संस्कार उर्दू का है।···वास्तव में उनकी काव्य-प्रतिभा को सींचा एक ही नदी ने, यद्यपि दूसरी का आकर्षण उनमें बड़ा प्रवल रहा और उसे वे पूज्य भी मानते रहे···। चालीस वरस तक हिन्दी लिख कर भी उन्होंने हिन्दी से सीखा बहुत कम : अव भी उर्दू कविता लिखते हैं तो उसके अनुशासन में रहते हुए, उसकी रीति को अक्षुण्ण रखकर, और हिन्दी कविता लिखते हैं तो मनमाने प्रयोग (और सब प्रयोग उर्दू के, कभी-कभार अँगरेजी के) करते हुए।" आगे वे उनके बारे में कहते हैं : "पर हिन्दी से उन्हें इतना कम सीखना था तो हिन्दी की ओर वह आये क्यों ? आये **हिन्दी के इस नाद सौन्दर्य के कारण**। (जोर मूल में)···यह उर्दू के कवि का एक प्रकार का शब्दमोह ही था : और शमशेर की पहले की हिन्दी कविता में पन्त और महादेवी की शब्दावली के प्रति यह मोह बड़ा स्पष्ट पहचाना जाता है। शब्दों का मोह अनेक कवियों को होता है, पर वे उन्हें अपनी कविता में खपाने की कोशिश भी करते हैं और उस कोशिश में उनकी भाषा संस्कारवती होती जाती है। पर शमशेर की हिन्दी कविता में ये शब्द विलकुल अलग के अलग रह जाते हैं : न अर्थवृद्धि करते हैं, न शब्दार्थ की दृष्टि से किसी अनिवार्यता, किसी औचित्य या किसी संगति का भी प्रमाण देते हैं ; बेमेल दीखते हुए वे अधर में टँके से रह जाते हैं···।" अज्ञेय ने स्पष्टतः यहाँ शमशेर की काव्य भाषा के सम्बन्ध में एक अतिवादी बिन्दु पर जाकर वात की है। कारण यह है कि उनका ध्यान या तो उस पर पड़ी उर्दू की छाप पर रहा है या फिर उनकी पहले की सिर्फ उन कविताओं पर, जिनकी शब्दावली पन्त-महादेवी की शब्दावली से प्रभावित है। वे यदि उनकी काव्यभाषा में मिलने वाले खड़ी बोली के संस्कारों को भी देखते और छायावादी कवियों के प्रभाव के बीच से निकलते शमशेर की अपनी अभिव्यक्ति के मार्ग को भी पहचानते तो उसके सम्बन्ध में इस तरह की सरल और चलती हुई टिप्पणी न करते। 'उदिता' की उसी भूमिका में, जिससे ऊपर कई उद्धरण दिये गये हैं, शमशेर ने इस विषय में भी लिखा है, जो अत्यन्त मार्मिक है। उनका कहना है : "शमशेर साहब की कविता सच पूछिए तो मजबूरी और लाचारी की कविता है।···विचारों को हिन्दी की परम्परा से वाकफीयत कम है और संस्कृत बिलकुल जानते नहीं। सिर्फ अपनी जवान से प्यार करते हैं, कहते हैं। (या शायद प्यार होने का घमंड है। आखिर उनके घर की, प्रान्त की जवान है खड़ी बोली) इसलिए ठेठ अपने बोलचाल के लहजे में—हाँ पंडिताऊ शब्दों का पुट फिर भी आ ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गया है इधर-उधर—और बिला तकल्लुफ अपने मन की मौज में बह कर अपनी भाषा का अ भावों के साँचे में ढाल कर इस्तेमाल किया है। आँखों में जो बसा, कानों में समाया और दिल जो रम गया, उसी को झलकाया, उसी को उजागर किया; जहाँ तक अपने वस में था।" इ कथन में जो बात ध्यान देने लायक है वह यह कि शमशेर के पास परम्परागत और एक बड़ी ह तक पंडिताऊ हिन्दी भाषा की विरासत नहीं रही और उन्होंने मजबूरी में अपने घर की जुबान खड़ी बोली में और इसीलिए ठेठ अपने बोलचाल के लहजे में कविता में लिखी है। यह ठीक है कि आरम्भ में उनकी कविताओं में हिन्दी के 'पंडिताऊ' शब्द मिलते हैं, पर हमारा ध्यान वैसी कविताओं पर केन्द्रित होना चाहिए, जिनमें उस भाषा के दर्शन होते हैं, जो उनकी अपनी भाषा है और जिसका स्रोत उर्दू या हिन्दी साहित्य न होकर वह क्षेत्र है, जिसकी जुबान खड़ी बोली है। शमशेर की यह अपनी भाषा 'उनकी आँखों में बसी', 'कानों में समाई' और उनके 'दिल में रमी' है जिसका मतलब यह है कि काव्य भाषा उनके लिए उस रूप में सीखने और ग्रहण करने की चीज नहीं है, जिस रूप में वह अज्ञेय के लिए रही है। वह उनके लिए अधिक आत्मीय और गहरी है। उनकी इस भाषा की विशेषता यह है कि उसमें उर्दू और हिन्दी का फर्क करना मुश्किल है। अज्ञेय ने हिन्दी शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में शमशेर के 'अविवेक' की जो बात कही है, उसका खंडन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि हिन्दी कविता के पाठकों को शमशेर अपने शब्द विवेक का परिचय अच्छी तरह से दे चुके हैं। यह उनका शब्द विवेक ही है, जिससे वे थोड़े शब्दों से बहुत ज्यादा अर्थ का सम्प्रेषण करते हैं।

प्रगतिशील कविता शमशेर, केदार, नागार्जुन, त्रिलोचन और मुक्तिबोध की कविताओं में अपनी बुलन्दी पर पहुँचती है। इन कवियों के साथ जैसे उस कविता के नये इतिहास का आरम्भ होता है। 'उदिता' में शमशेर की बिलकुल आरम्भिक कविताएँ संकलित हैं। ऐसी स्थिति में उन्हीं के शब्द लेकर कहें तो यह 'नये इतिहास का पहला वरक' है। इस कारण प्रगतिशील हिन्दी कविता के इतिहास में इस संकलन का महत्त्व हमेशा अक्षुण्ण रहेगा।●●

हमारा नया प्रकाशन

गोदान : नया परिप्रेक्ष्य

ले० डा० गोपाल

यह पुस्तक प्रेमचन्द के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' के विविध पक्षों पर नया प्रकाश डालती है। 'गोदान' पर अब तक प्रकाशित आलोचना पुस्तकों में सर्वाधिक विस्तृत और गम्भीर विवेचन से सम्पन्न; एम० ए० और आइ० ए० एस० के परीक्षार्थियों तथा प्रेमचन्द के अध्येता छात्रों और प्राध्यापकों के लिए सर्वाधिक उपयोगी।

मूल्य : सजिल्द : 45·00 रु०; पेपरबैक : 20·00 रु०

सम्पर्क

ग्रन्थ निकेतन, ८७/२४, राजेन्द्रनगर, पटना–१६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतने पास अपने : स्वतन्त्रता और सौन्दर्य की कविता[1]

नन्दकिशोर नवल

शमशेर के कवि-मानस की बनावट अत्यन्त जटिल है। उसमें प्रेम है तो सौन्दर्य भी, मनुष्य है तो प्रकृति भी, व्यक्ति है तो समाज भी और देश है तो संसार भी। ये सभी उनमें परस्पर घुले मिले हैं और उसी रूप में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त होते हैं। यदि इनमें से कोई एक चीज दिखलाई पड़ती है और बाकी चीजें नहीं, तो इसका मतलब यह नहीं होता कि उनकी कविता इकहरी है और उसमें बाकी चीजें नहीं हैं। वे अनिवार्य रूप से वहाँ रहती हैं, भले अदृश्य रूप में। गहराई में झाँकने पर वे चीजें भी दिखलाई पड़ने लगती हैं। इसी कारण शमशेर हिन्दी के प्रगतिशील कवियों में ही नहीं, सभी आधुनिक कवियों में अत्यन्त विशिष्ट कवि हैं। अपनी एक कविता में उन्होंने कहा है : "अनगिनत आइनों को / न जाने कितने कोणों से प्रतिबिम्बित किए हुए"। यह बात उनकी अपनी कविताओं पर पूरी तरह से लागू है।

हम पहले शमशेर के **'इतने पास अपने'** की देश और समाज को विषय बना कर लिखी गयी कविताओं को लें। उन्होंने 'ओ मेरे घर' शीर्षक कविता में पृथ्वी को सम्बोधित करते हुए कहा है : "इन्सान के अँखोटे में डाल कर मुझे / सब कुछ तो दे दिया / जब मुझे मेरे कवि का बीज दिया कटु-तिक्त।" इस कथन में जो बात ध्यान देने लायक है वह है 'कवि का कटु-तिक्त बीज'। कवि सर्वाधिक संवेदनशील सामाजिक प्राणी होता है और आधुनिक कवि की विशेषता यह है कि उसे समाज में कटु और तिक्त अनुभूतियाँ ही प्राप्त होती हैं। शमशेर ने इस कविता में वर्तमान समाज की अनुभूतियों को अनेक भयावह बिम्बों में अभिव्यक्त किया है। उनमें से एक बिम्ब यह है : "और दी मुझे एक लम्बे नाटक की / हँसी / फैली हुई / दर्शकशाला के इस छोर से उस छोर तक / लहराती कटु-क्रूर।" पूँजीवादी समाज की यह हृदयहीन और अमानवीय हँसी क्या इन पंक्तियों से गुजरते हुए कानों में नहीं गूँजने लगती ? शमशेर ने इस पृथ्वी से, यानी उस ग्रह से जिस पर यह संसार बसा हुआ है, ऐसी आत्मीयता कायम कर रखी है कि देख कर आश्चर्य होता है। वे पृथ्वी के साथ अपने को बहुत ही अकेला महसूस करते हैं, क्योंकि दोनों ही दुर्दशाग्रस्त हैं और कोई उन्हें उससे उबारने वाला नहीं है। वे 'हमारी जमीन' शीर्षक कविता में एक विराट् (और साथ ही सूक्ष्म भी) बिम्ब के द्वारा पृथ्वी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसके और अपने अकेलेपन के बारे में कहते हैं : "हम दोनों कितने / अकेले इस विश्व में ! / एकदम कितने / अकेले—दूर सबसे···सबसे। / यद्यपि गुंजान खिलखिलाते या मिचमिचाते / तारों से घिरे हुए—एकदम घबड़ा देनेवाली / (तारों की) / झिलमिलाती झाड़ियों से घिरे हुए : फिर भी / उफ कितने असहाय और अकेले—मैं / और मेरी जमीन, इस विश्व में !" शमशेर इस अपूर्व सुन्दर पृथ्वी के अन्त की कल्पना से ही काँप उठते हैं और उसके प्रति अत्यन्त उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कहते हैं : "मैं तो खैर······ / मेरी जमीन भी क्या / एक दिन / एक दिन··· ··· ? खैर ?" इन दोनों कविताओं से भौतिक और सामाजिक जीवन के प्रति उनके

---

1. इतने पास अपने, ले० शमशेर बहादुर सिंह, प्र० राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 8, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-2, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 75, सजिल्द, मूल्य 16·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगाव और फिर उनकी पीड़ा का अनुमान लगाया जा सकता है। स्वभावतः उन्होंने अपने मन में एक नये विश्व की कल्पना कर रखी है। उनका आकांक्षित विश्व यह है : "वहाँ अभी बस्तियाँ नहीं बसायी गयीं / वहाँ झुलसा देने वाला दिव्य प्रकाश अभी नहीं उजाला गया / और लोग वहाँ वर्णों के वर्णों के प्रवर्णों में / सवर्णित घूर्णित नहीं हुए अभी।" इस विश्व के समानान्तर शमशेर ने उस विश्व को रखा है जिसमें हम सभी रहने को अभिशप्त हैं : "बड़ी से बड़ी कृति यहाँ तो / कोई बड़ा ही कीमती इश्तहार है / आदमी कोई आधुनिक बाजार है / जितना ही बड़ा आर्टिस्ट जो है / उतना ही बड़ा पत्रकार है"। ('गोया वो…')

शमशेर की पीड़ा वर्तमान समाज को लेकर है। वह उन कुछ मूल्यों को लेकर है, जो आज विघटित हो रहे हैं। उन्होंने 'विजय सोनी के चित्र' शीर्षक कविता में कहा है : "आज की चीख-पुकार में / एक बहुत कोमल तान / खो गयी है।" संघर्षरत मनुष्य के प्रति अपने प्रेम का परिचय उन्होंने इन शब्दों में दिया है : "उसे / मीठी / नींद कब / आएगी / वह नींद / जो मीठी सुबह का / उजाला लाए / चतुर्दिक / समान रूप / उजाला।" ('संसार के चक्के पर हूँ') 'मेरे समय को…' में उन्होंने कवि की विवशता इस रूप में अंकित की है : "शतरंज का एक खाना है / जिसमें तुम मुझे ऊपर उठाकर रखते हो / हवा में कुछ देर अंगूठे और अँगुलियों के बीच / अनिश्चय में थामे हुए / जिस समय मैं समझता हूँ कि यह / मेरी कल्पनाशीलता का लोक है / मगर जो वास्तव में एक बारीक काट है / रुके हुए साँस की।" इसी तरह उन्होंने 'एक आदर्श / लहरों के पार…' में जनसाधारण की दुरवस्था इस रूप में वर्णित की है : "हम राख हैं जो आईने के मुँह पर मले हुए हैं / क्या उसे माँजने के लिए? / नींद में ही हमारी यातना चित्र बनती है / ओह / उसे कैसे समझें / सरल और दुरूह हमारा दुख बच्चों-सा ही है।"

लेकिन वर्तमान सामाजिक स्थिति का प्रभाव शमशेर पर इस रूप में नहीं पड़ा है कि वे निराश होकर 'सिनिक' हो जाएँ। जहाँ उन्होंने यह कहा है कि एक बहुत कोमल तान खो गयी है, वहीं यह भी कहा है कि 'उसे पाना है' और फिर यह कि "हम पीछे मुड़ कर न देखें।/ सामने ही देखें / …और हम उसको देखें / जो हमारा / आनेवाला व्यक्ति है।" उनकी मूल्य चेतना ऐसी है कि वह 'चतुर्दिक समान रूप उजाला' चाहती है, ऐसा नहीं कि वह उजाला कहीं तेज हो और कहीं मन्द। 'फान गोग का एक चित्र' शीर्षक उनकी जो कविता है उसमें तो उन्होंने मानव-विरोधी शक्तियों के पराजित होने का बड़े दृढ़ शब्दों में आख्यान किया है : "तमसा-से काले काग/ झुंड-के-झुंड गहरे नीले-काले / काक-रोर करते / ढक लेने उसे /मानो छा ही लेंगे उसे/ लील ही जाएँगे वे ज्वार को / ऐसे/उमगे-उमगे / लीन हुए…।/ बार-बार आते वो / बार-बार ! / व्यर्थ / व्यर्थ !" शमशेर के सम्बन्ध में एक आम धारणा यह बन गयी है कि वे प्रभाववादी कवि हैं और अपनी कविताओं में उन्होंने सिर्फ प्रकृति और मनोभावों के बदलते हुए प्रभाव-चित्र अंकित किए हैं, जो अपना लक्ष्य आप ही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह धारणा पूरी तरह से सही नहीं है और शमशेर फ्रांसीसी प्रभाववादी कवियों से काफी भिन्न हैं। इसका कारण उनका राजनीतिक और सौन्दर्यात्मक दृष्टिकोण है, जो उन्हें आत्मपरकता में बँधने नहीं देता। फ्रांसीसी प्रभाववादी कवियों में हम जीवन के अनिवार्य पक्षों का बोध और युगीन संघर्षों तथा प्रक्रियाओं की छाया नहीं पाते, जबकि शमशेर की कविता में ये चीजें गहरे रूप में मिलती हैं। उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो कविताएँ स्पष्ट रूप से राजनीतिक या सामाजिक कविताएँ हैं, उन कविताओं की ओर हम यहाँ संकेत नहीं कर रहे हैं। हमारा संकेत उन कविताओं की ओर है, जिनका हवाला ऊपर दिया गया है। इन कविताओं में बिम्बों के माध्यम से सामाजिक वास्तविकता का सार-तत्त्व अभिव्यक्त हुआ है। ये कविताएँ इस बात का सबूत हैं कि शमशेर केवल वायु और प्रकाश के क्षण-क्षण परिवर्तनशील सूक्ष्म प्रभाव-चित्र अंकित करनेवाले कवि नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे कवि हैं, जो बहुत ही ठोस जमीन पर खड़ा है।

मार्क्सवाद के अनुसार अर्थ-व्यवस्था यदि जड़ है, तो सौन्दर्य पुष्प-प्रस्फुटन। गोर्की ने भी इस बात पर बल दिया है कि जनता की स्वतन्त्रता और सौन्दर्य की आकांक्षा ही सर्वहारा क्रान्ति के लिए निर्णायक होती है। स्वभावतः समाजवादी समाज में जनता को शुद्ध उपयोगिता-मूलक आवश्यकताओं की पकड़ से मुक्त कर उसमें प्रकृतिप्रदत्त सौन्दर्यात्मक संवेदना को जगाने और पूर्ण रूप से विकसित करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार सौन्दर्य से प्रगतिशील चेतना का विरोध नहीं, बल्कि घनिष्ठ सम्बन्ध है। शमशेर हिन्दी के आधुनिक कवियों में इस दृष्टि से अप्रतिम हैं कि उनकी सौन्दर्य-चेतना अत्यन्त विकसित है। यह उनके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का सूचक है। सौन्दर्य मनुष्य का हो, या प्रकृति का, उसकी बहुत ही गहरी और सूक्ष्म अनुभूति शमशेर की कविताओं में मिलती है। 'कत्थई गुलाब' में वे प्रेमिका के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन इस रूप में करते हैं: "आकाशीय / गंगा की / झिलमिली ओढ़े / तुम्हारे तन का छन्द / गतस्पर्श / अति अति अति नवीन आशाओं भरा / तुम्हारा / वन्द वन्द"। आकाशगंगा की ओढ़नी जहाँ चित्र को विराटता दे देती है, वहाँ 'तन का छन्द' हमारा ध्यान शरीर तक सीमित न रख कर उसकी उस लय तक ले जाता है, जो 'गतस्पर्श' है। इसी तरह 'बन्द बन्द' में 'अति अति अति नवीन आशाओं' का संचार शारीरिक सौन्दर्य में भावना का संचार कर उसकी स्थूलता कम कर देता है। एक अन्य कविता 'सौन्दर्य' में शमशेर ने सौन्दर्य की बहुत ही गहरी अनुभूति प्रस्तुत की है, जो यह है: " न जाने किसने मुझे अतुलित / छवि के भयानक अतल से / निकाला...जब तू, बाल लहराए, / मेरे सम्मुख खड़ी थी: मुझे नहीं ज्ञात।" इसी कविता में वे प्रेमिका की हँसी का भी अद्भुत चित्र अंकित करते हैं: "तेरी हँसी को मैं उषा की भाप से निर्मित / गुलाब की बिखरती पंखुड़ियाँ ही समझता था।"।

मनुष्य के सौन्दर्य की तरह ही शमशेर ने प्रकृति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त बारीक और अछूते चित्र अंकित किये हैं। सन्ध्या की 'चुप्पी' और 'नीरवता' का निराला ने भी वर्णन किया है और पन्त ने भी, लेकिन शमशेर के इस वर्णन में जो सूक्ष्मता और आत्मीयता है वह अपूर्व है: "शां ति : श्री प्रा णों की / इ त नी पा स अपने !" यही बात हम पन्त की इस पंक्ति 'पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर' से शमशेर की इन पंक्तियों की तुलना पर पाते हैं: "एक्-इक प त्ता सा कत् / ठै रा, सं ध्या भा में / सु न ता - सा कुछ... कि स को / इ त ने पास अपने !" गेरू के रंग के बादल काले आकाश में छाये हुए हैं। वे चल रहे हैं, पर इतने धीरे धीरे कि लगता है, स्थिर हैं। इस दृश्य का चित्रण शमशेर इस प्रकार करते हैं: "बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी, खुले हैं / श्याम पथ पर / स्थिर हुए-से, चल।" गेरू-पंख 'मौन' क्यों हैं? इसलिए कि उनमें सरसराहट नहीं है। निराला ने 'खजोहरा' में काले काले बादलों की उपमा हाईकोर्ट के काले काले लबादे धारण करने वाले वकीलों से दी थी। जैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वकील वहीं टूटते हैं, जहाँ पैसा होता है, वैसे ही बादल भी वहीं बरसते हैं, जहाँ पहले से पानी भरा होता है। शमशेर को गेरू के रंगवाले बादलों को देख कर गेरुआ लबादा धारण करनेवाले संन्यासियों की याद आती है। जैसे संन्यासी दुनिया से कोई मतलब नहीं रखते, वैसे ही बादल भी पृथ्वी पर बरसने के लिए गर्जन-तर्जन नहीं कर रहे, आपस में टकरा नहीं रहे, निर्लिप्त भाव से मन्द मन्द आकाश में बिचर रहे हैं! 'जाड़ों की सुबह के सात-आठ बजे' शीर्षक कविता में शमशेर ने जाड़े की प्रीतिकर धूप का वर्णन किया है जो मनुष्य से लेकर वस्तुओं के अन्दर तक पैठ गयी है और उन्हें हलकी गरमाहट दे रही है। धूप की ऐसी विस्तृत और सूक्ष्म अनुभूति वाली कविता निश्चय ही हिन्दी में पहले नहीं लिखी गयी। प्रमाण के लिए इस छोटी कविता को पूरा उद्धृत करना जरूरी है :

उड़ते पंखों की परछाइयाँ
हलके झाड़ से धूप को समेटने की कोशिश हो जैसे
व्यर्थ, क्योंकि
धूप वस्तुओं के अन्दर है जहाँ-जहाँ भी है, इस समय तो

केवल परछाइयों के विभिन्न फ्रेम
सुप्त हैं
(धूप होने का स्वप्न देखते हुए)…

धूप मेरे अन्दर भी। इस समय तो।
परछाइयों के फ्रेम के अन्दर
सुप्त।

'सौन्दर्य', 'सन्ध्या', 'बादलों के मौन गेरू-पंख' और 'कत्थई गुलाब' शमशेर की प्रेम-कविताएँ हैं, जिनमें उन्होंने प्रेम की अत्यन्त मार्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति की है। 'सौन्दर्य' की ये पंक्तियाँ ऊपर उद्धृत की जा चुकी हैं : "तेरी हँसी को मैं उषा की भाप से निर्मित / गुलाब की बिखरती पंखुड़ियाँ ही समझता था"। उसके बाद वे कहते हैं : "मगर वह मेरा हृदय भी कभी छील डालेगी, / मुझे मालूम न था।" सन्ध्या-काल में बादलों के सिरों पर विलीन होने के पहले डूबते हुए सूर्य की मन्द आभा वाली किरणें चमकती हैं। उन्हें देख कर शमशेर के मन में कुछ क्षणों के लिए प्रेम की धुँधली स्मृतियाँ जग पड़ती हैं। वे इस बात से उल्लसित होते हैं कि बादल और स्मृतियाँ उनके इतने करीब हैं : "या दों की द्वा भा एँ / बा दल् के / भा लों पर / चम की-सी लय हो ने / धी रे धी रे धी रे / इ त ने पा्स अपने !" इसी समय बिजली चमकती है तो कवि को लगता है कि वह उसकी प्रेमिका की वाणी है, जो इशारे से कुछ कह रही है। उसे इस बात से भी प्रचुर प्रसन्नता होती है कि उसकी प्रेमिका के स्वर की प्रतिध्वनि उसके इतने करीब है : "वा णी वि द्यु ल्ले खा—/ से क्या इं गित कर ती / दे खा ? तू ने दे खा ? / ते रे स्वर का स्वर है / कि त ने पास अपने /" ('सन्ध्या') नैकट्य की यह अनुभूति निश्चय ही जितनी ही मार्मिक है, उतनी ही सूक्ष्म भी। 'बादलों के मौन गेरू-पंख में' कवि कहता है कि आकाश में अब बादल स्थिर-से हैं, उसका मन अज्ञात दिशा में बैठता जा रहा है : "तू कि पत्थर हो गया है / ओ विहग-मन / बैठता जाता रहा है / किस दिशा में ?" 'कत्थई गुलाब' में प्रेमिका के सौन्दर्य के साथ-साथ प्रेम की तड़प भी है, जो प्रेमिका के इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्बोधन से व्यंजित होती है : "ओ प्रेम की / असम्भव सरलते / सदैव सदैव ।" 'थरथराता रहा' शमशेर की एक ऐसी कविता है, जिसमें वस्तुतः 'एक विचित्र प्रेम अनुभूति' बहुत ही सशक्त रूप में अभिव्यक्त हुई है । यह कविता भी आकार में छोटी है, इसलिए इसे भी पूरा उद्धृत किया जा सकता है :

थरथराता रहा जैसे बेंत
मेरा काय······ कितनी देर तक
आपादमस्तक
एक पीपलपात में थरथर ।
काँपती काया शिराओं-भरी
झन-झन
देर तक बजती रही
और समस्त वातावरण
मानों झंझावात
ऐसा क्षण वह आपात
स्थिति का ।

आरम्भ में कहा गया है कि शमशेर संश्लिष्ट अनुभूतियों के कवि हैं । इसी के परिणाम-स्वरूप वे समाज की भी कविता लिखते हैं तो हमें उसमें उनके व्यक्ति-मन की पीड़ा और अकेलापन देखने को मिलता है । इसी तरह उनकी प्रेम कविता का भी सामाजिक सन्दर्भ होता है । उनका प्रेम कोई आध्यात्मिक वस्तु नहीं है । वह इसी समाज के भीतर इसी समाज के व्यक्ति विशेष के प्रति उत्पन्न हुआ है । इसी कारण वह 'क्रूर-तम' और 'कटुतम' है । शमशेर का मानव-सौन्दर्य भी प्रकृति-सौन्दर्य से युक्त है और उनका प्रकृति सौन्दर्य भी मानव-सौन्दर्य से । उदाहरण के लिए उनकी प्रेमिका 'आकाशीय गंगा की झिलमिली ओढ़े' है और उनके 'बादलों के मौन गेरू-पंख' 'संन्यासी' हैं । इस सौन्दर्य का समाज से सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता, पर जैसा संकेत किया जा चुका है, इन दोनों के बीच सम्बन्ध है और वह वैसा सम्बन्ध है, जैसा पौधे की जड़ और पुष्प प्रस्फुटन के बीच होता है । शमशेर का व्यक्तित्व स्वतन्त्र है, इसलिए वे सौन्दर्य की गहरी और सूक्ष्म अनुभूति करने में समर्थ हैं । स्वभावतः उन्होंने मनुष्य को स्वतन्त्र और सौन्दर्य-चेतना सम्पन्न बनाने के लिए कविता का इस्तेमाल किया है । उन्हें कला की शक्ति मालूम है । उन्होंने 'कला' शीर्षक कविता में ही कहा है : "कला सबसे बड़ा संघर्ष बन जाती है / मनुष्य की आत्मा का—/ प्रेम का कँवल कितना विशाल हो जाता है / आकाश जितना / और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते हैं / मनुष्य की आत्मा में !" कवि की उन्होंने जो परिभाषा दी है, वह अद्भुत है । अपनी 'शाम-सुबह' शीर्षक कविता में वे कहते हैं : "उषा···/ व्योम उज्ज्वल स्निग्ध / सीधा देवता-सा खड़ा है / स्थिर / मानवी व्योम/ कवि केवल कवि···" । यह आकाश तो दैवी या प्राकृतिक है । मानवी आकाश तो कवि है । इस तरह कवि शमशेर के लिए मूल्यनिरपेक्ष या मूल्यध्वंसक नहीं, बल्कि स्वतन्त्रता और सौन्दर्य-जैसे मूल्यों का संवाहक है ।

शमशेर की कविता की विशेषता उसकी लयात्मकता, उसकी भाषा और उसका चित्र-विधान है । रूप-शिल्प सम्बन्धी विविधता हमें अन्य कवियों में भी मिलती है, पर लय का जैसा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूक्ष्म प्रयोग शमशेर ने अपनी कविता में किया है, वैसा हिन्दी के और किसी कवि ने नहीं। शमशेर कविता की लय का भी सूक्ष्म प्रयोग करते हैं और गद्य की लय का भी। प्रस्तुत संग्रह की पहली ही कविता है 'सन्ध्या'। यह एक छन्दोवद्ध कविता है, पर इसमें लय का सूक्ष्म प्रयोग देखते ही बनता है। चार चरणों वाली इस कविता के आरम्भिक तीन चरण बारह-बारह मात्राओं के हैं और अन्तिम ग्यारह मात्राओं का। बारह मात्राओं के चरणों से बना छन्द बहुत ही छोटा होगा, लेकिन शमशेर ने इस छन्द में ऐसी मन्थर लय का समावेश किया है कि वह एक लम्बा छन्द प्रतीत होता है। लय में मन्थरता वे शब्दों के वर्णों को अलग करके लाते हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने 'सन्ध्या दीर्घरश्मीया / उच्छ्वासांगी प्रीया' न लिख कर 'सं ध्या दी र्घा रमी या / ऊ छ्वा सां गी प्री या' लिखा है। चौथे चरण में एक मात्रा की कमी कर देने से लय की गति में किंचित् तीव्रता आ गयी है। इसे उन्होंने उसके तीन शब्दों में से आरम्भिक शब्द के वर्णों को अलग अलग लिख कर और अन्तिम दो शब्दों के वर्णों को प्रचलित रूप में रख कर सूचित किया है, बल्कि कहना चाहिए कि इसके द्वारा भी उन्होंने लय को किंचित् तीव्र बना दिया है। यह कविता एक साथ पीड़ा और उल्लास की कविता है, पर यह शान्त मनोदशा की कविता है, अशान्त मनोदशा की नहीं, जिस कारण इसमें चंचल गति वाला छन्द और तीव्र गतिवाली लय नहीं चल सकती थी। स्वभावतः कवि ने इसमें छोटे छन्द में भी शान्त और मन्थर गति का समावेश किया है। तीन चरणों के बाद चौथे चरण में पास होने की बात है, तो एक मात्रा कम करके लय को गिरा दिया गया है और उसमें अन्तिम दो शब्दों के वर्णों को प्रचलित रूप में रख कर मदद ली गयी है। वह इस प्रकार है : 'इ त नी पास अपने!'

शमशेर का यह सूक्ष्म लय बोध कमोवेश उनकी सभी कविताओं में देखने को मिलता है। 'बादलों के मौन गेरू-पंख' एक विषम मात्रिक छन्द की कविता है। इसका प्रथम चरण अट्ठाईस मात्राओं का है और उसकी लय में प्रचुर दीर्घता है। उदाहरणार्थ 'बादलों के मौन गेरू-पंख, संन्यासी, खुले हैं'। ऐसा क्यों है? इसलिए कि कवि को यहाँ उन बादलों का वर्णन करना है, जो आकाश को छा रहे हैं। इसी कविता में आगे पत्थर की तरह मन के नीचे बैठते चले जाने का वर्णन है। स्वभावतः उसमें चरण छोटे हो गये हैं और लय की दीर्घता कम हो गयी है : "तू कि पत्थर हो गया है, / ओ विहग-मन, / बैठता जाता रहा है / किस दिशा में ?" जहाँ शमशेर गद्य में कविता लिखते हैं, वहाँ भी गद्य के अपने रूप को सुरक्षित रखते हुए उसमें लय भर देते हैं। यह काम वे यति और गति के द्वारा करते हैं। उनकी वाक्य रचना गद्य की तरह दुरुस्त रहती है, पर उसमें वे निश्चित जगह पर यति और गति ला देते हैं। उनकी 'धारीदार जाँघिया पीला' पूरी तरह से गद्य में लिखी गयी कविता है, पर उसे हम गद्य नहीं कह सकते, क्योंकि उसमें ऐसी लय है, जो हमें गद्य में नहीं मिलती। यह लय यति अथवा विराम और गति के कारण ही सम्भव हुई है। कविता की इन अन्तिम पंक्तियों से उसकी लय का अनुमान सहज ही हो सकता है :

अब भी   इत्मीनान से
उसी एक चाल से और उसी अन्दाज से
वो मेरे सामने से धीरे-धीरे
निकला चला जा रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यति और गति लाने में निश्चय ही दो शब्दों के बीच डाला जाने वाला अन्तराल ही नहीं, बल्कि चरणों का संयोजन भी सहायक होता है। कभी कभी शमशेर गद्य की वाक्य-रचना को छोड़ कर केवल शब्दों के सहारे कविता लिखते हैं। वहाँ यति और गति का नियम कुछ दूसरा होता है। ऐसी कविताओं में प्रत्येक शब्द के बाद यति आती है। यदि कई शब्द हुए, तो वे मिल कर एक इकाई बन जाते हैं। यह बात प्रस्तुत संग्रह की अन्तिम कविता 'शोभा' में देखी जा सकती है :

मासूमियत हरी दूब कलियाँ हलकी
मूँगा धूप विश्वास सहज
उल्लास बहुत-ज्ञान-नहीं उसकी
सुनहली पहली-पहली-सी किरनें

इस उद्धरण में 'हरी दूब', 'विश्वास सहज' और 'बहुत-ज्ञान-नहीं' ये मिल कर एक-एक शब्द बन गये हैं। 'मासूमियत' तो एक शब्द है ही, हम कविता के लय-संयोजन में बँध कर 'हरी दूब' में दो शब्दों के बीच जो अन्तराल है, उसे भुला देते हैं और उन्हें एक शब्द की तरह पढ़ते हैं, जिससे कविता में लय की सृष्टि होती है। गद्य-कविताओं में भी शमशेर ने विषय-वस्तु और मनोदशा के अनुसार ही लय का निर्धारण किया है। दूसरी कविता में कवि की मनोदशा ही उसकी विषय वस्तु है, इसलिए कविता की लय उसी के अनुसार चलती है।

शमशेर की काव्यभाषा एक खास तरह की काव्यभाषा है। उसमें कभी कभी छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और उर्दू की रूमानी तथा तरक्कीपसन्द शायरी की प्रतिध्वनि एक साथ सुनाई पड़ती है। शमशेर की खूबी यह है कि उन्होंने हिन्दी और उर्दू की काव्य परम्पराओं को मिला कर ऐसा लहजा तैयार किया है, जो केवल उनका है। उस लहजे में हिन्दी का संस्कार है और उर्दू की अदा है। उसका बहुत ही सधा हुआ इस्तेमाल हमें उनकी कविताओं में मिलता है। उसमें उन्होंने जैसी सूक्ष्म और अमूर्त भावनाओं की अभिव्यक्ति की है, वह पहले देखने में नहीं आयी थी। मजे की बात यह है कि एक लहजा होते हुए भी हमें उनकी कविताओं में काव्यभाषा के कई स्तर मिलते हैं। उदाहरण के लिए वे यह भी लिखते हैं कि "शफक नीलगूँ है" और यह भी कि "उसमें चमक न थी अभी / एक हलकी नीलाहट-सी लिए हुए / जैसे कोई आईना हो महज।" यहाँ एक ही भाषा के दो स्तर शमशेर ने कायम किये हैं। दूसरी ओर उनका यह भाषा प्रयोग है : "न जाने किसने मुझे अतुलित / छवि के भयानक अतल से निकाला……" फिर "थरथराता रहा जैसे बेंत / मेरा काय……"। इन उद्धरणों में 'अतुलित छवि' यह शब्द-योजना और इसमें खास तौर से प्रयुक्त 'अतुलित' विशेषण तथा 'काय' शब्द-प्रयोग ध्यातव्य है। 'अतुलित' और 'काय' दोनों ही हिन्दी कविता में प्रयुक्त पुराने शब्द हैं, जो शमशेर के हिन्दी संस्कार का परिचय देते हैं, लेकिन जो उनके लहजे में मिल कर अर्थ की नयी चमक और ताजगी से भर उठे हैं। कभी कभी शमशेर अँगरेजी और संस्कृत के शब्दों को मिला कर भी अभिव्यक्ति में नयी व्यंजना और शक्ति उत्पन्न करते हैं, जैसे इन पंक्तियों में : "कुंकुम रेखाचित्रों में / निर्वासित साम्राज्ञियाँ / आनन झलका जातीं / किसी किसी कैन्वास के चषक में"। यहाँ 'कैन्वास का चषक' में अँगरेजी और संस्कृत शब्दों के मेल से उत्पन्न की गयी नयी व्यंजना और शक्ति देखने योग्य है। शमशेर में हमें कभी कभी बहुत ही सरल और प्यारी भाषा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलती है, जिसमें सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति हैरानी में डाल देती है। "अमृत क्या है : सुबह / वह आयी कहाँ से ? / शाम से। हाँ / वह अँधेरों की मिठास से / पैदा हुई / सुबह" में हमें यह चीज देखने को मिलती है। 'अमृत' और 'सुबह' का मेल और ऐसा कि उससे एक खास और नया लहजा बन जाए, यही आधुनिक हिन्दी काव्य-भाषा को शमशेर की देन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्यभाषा में शमशेर जो कई स्तर कायम करते हैं, वह विषय-वस्तु के आग्रह के कारण। जहाँ जैसा चित्र और वातावरण निर्मित करना होता है, वहाँ वे वैसी भाषा का प्रयोग करते हैं।

शमशेर की काव्यभाषा जैसे लय से युक्त है, वैसे ही चित्रों से भी। उनके चित्रों की विशेषता यह है कि वे नाना रंगों से निर्मित हैं। अक्तूबर के बादल 'हल्के रंगीन ऊदे' हैं, पत्ते 'सन्ध्याभा' में ठहरे हैं, 'कत्थई' गुलाब 'केसरिया साँवलापन' दबाए हुए हैं, कगार 'हरा-नीला-सा' है, चिड़िया 'लाल भूरी' हैं, हँसी 'उषा की माप' से निर्मित है, व्योम 'उज्ज्वल' है, मौज 'गहरी सुनहरी' हैं, काग तमसा से 'काले' हैं, चाँद 'सँवलाती ललाई' में लिपटा हुआ है और धूप 'मूँगा' है। इस तरह शमशेर की कविता की दुनिया रंगारंग है। उनकी एक विशेषता यह है कि उनके चित्र स्थूल होते हैं, तो उनके साथ दूसरे चित्रों की सृष्टि कर वे उन्हें सूक्ष्म बना देते हैं : "हवा-सी एकदम पतली—/ कि आरपार देख लो—किन्तु / इस्पाती दीवार।" उदाहरण के लिए उनके ये दो चित्र देखे जा सकते हैं : "चेहरे की शामों में / होंठों की कश्तियाँ / हौले-हौले हौले-हौले / हिलतीं / मौन मधुर / इनमें ही भरी हुई रहती हैं / चुम्बन की मिस्टियाँ" और "एक सोने की घाटी जैसे उड़ चली / जब तूने अपने हाथ उठा कर / मुझे देखा / एक कमल सहस्रदली होंठों से / दिशाओं को छूने लगा / जब तूने आँख भर मुझे देखा।" शमशेर की कविता वाकई लय से गतिशील और चित्र से रंगारंग है। उन्हीं के शब्द लेकर कहें, तो "वास्तव में दो कैनवास हैं / एक तरल : एक स्थिर / दोनों पारदर्शी / एक दूसरे में छिपे हुए।" ●●

नागार्जुन का नया काव्य[1]

प्रेमशंकर

नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन 'तालाब की मछलियाँ' का प्रकाशन 1975 में हुआ था जिसमें 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली' तथा 'प्यासी पथराई आँखें' संकलनों की विशिष्ट कविताएँ आ गयी थीं। तभी से उनके अगले कविता-संग्रह की प्रतीक्षा थी, क्योंकि उनकी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में आ रही थीं और हम आश्वस्त थे कि नागार्जुन की रचनाशीलता जनान्दोलन के भीतर से निरन्तर सक्रिय है। नागार्जुन संस्कृत, पालि आदि प्राचीन भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं और अपने रिक्थ को गहरे स्तर पर पहचानते हैं। पर अपनी

---

1. तुमने कहा था, ले० नागार्जुन, प्र० वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमला नगर, दिल्ली-7, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 94, सजिल्द, मूल्य 18·00

2. खिचड़ी विप्लव देखा हमने, ले० नागार्जुन, प्र० सम्भावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-1, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 128, सजिल्द, मूल्य 25·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रचना की सामग्री वे जीवन से सीधे ही उठा लेते हैं, बिना किसी लाग लपेट के। कई बार वे हमें फक्कड़ कबीर के बहुत निकट लगते हैं—निर्भीक और बेलाग। नागार्जुन ने 'कालिदास सच सच बतलाना / इन्दुमती के मृत्युशोक से / अज रोया या तुम रोये थे ?', 'बादल को घिरते देखा है' जैसी कविताएँ रची हैं जहाँ वे रिक्थ की गहरी पहचान का बोध कराते हैं, पर यही कवि जब सामयिक जीवन को अपनी रचनाओं में सीधे ही उतारता है तो रचना का एक द्वन्द्व सामने आता है। नागार्जुन में प्रतिक्रियाएँ बहुत तेजी से जागती हैं—लगभग त्वरित, पर इसका कारण कोई तात्कालिक विवशता नहीं है, वरन् कवि का जागृत संवेदन है जो चोट खाकर तिलमिला उठता है। वे साम्यवाद से जुड़े रहे हैं पर भारत पर चीनी आक्रमण को लेकर दल से उनका तीव्र मतभेद हुआ और उन्होंने कविता में अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। नेहरू को सम्बोधित कविता में व्यंग्य भरी पंक्तियाँ हैं : 'डाँगे हो जाते राज्यपाल'। इसी प्रकार जिस क्रान्ति में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था, उसकी असफलता पर 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' की कविताएँ लिखी गयीं। इन्हें नागार्जुन के अन्तर्विरोध के रूप में प्रस्तुत करना स्थिति का सरलीकरण होगा। 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' की एक कविता में नागार्जुन ने स्वयं को 'तरल आवेगों वाला, अति भावुक, हृदयधर्मी जनकवि' कहा है, और यहीं उनके व्यक्तित्व का केन्द्रीय आधार हमें मिल जाता है जिसके आलोक में हम उनकी रचनाशीलता की सही पहचान कर सकते हैं।

'तुमने कहा था' और 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' दोनों 1980 के प्रकाशन हैं और इनकी पीठिका में पिछले वर्षों का परिवेश मौजूद है। ये कविताएँ एक साथ दो दुनियाँ सामने लाती हैं : पहले कवि संवेदन के साथ क्रान्ति की स्थितियों से जुड़ता है। यहाँ मुख्य रूप से वह तानाशाही के विरोध में है और फिर मोहभंग से गुजरते हुए वह तथाकथित क्रान्ति की खिल्ली उड़ाता है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि राजनीति के सामयिक सन्दर्भ कविता की शक्ल कैसे लेते हैं ? हम स्वीकारते हैं कि नागार्जुन ने सामग्री सीधे ही राजनीति के मंच से प्राप्त की है, वक्तव्यबहुल भी हो गये हैं। कई बार आक्रोश इतना तीव्र और त्वरित है कि हमें डायन, चुड़ैल जैसे शब्द भी सुनने को मिलते हैं, पर यहाँ कवि का मुख्य विरोध तानाशाही से है जो बर्बर हुआ करती है। प्रायः हम नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं के मूल में विद्यमान आहत संवेदना, गहरी जीवन दृष्टि, निरीक्षण का पैनापन और मानवीय चिन्ता को नहीं देख पाते। जिन्दगी से आँख मिलाते हुए नागार्जुन कविताओं में सघन रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं : बाढ़, अकाल, कर्फ्यू, जुलूस आदि के। 'बाढ़ : '67' पटना का दृश्य है जहाँ कविता स्थितियों को बिम्बों में पेश करती है; पूरा दृश्य जीते जागते रूप में आता है : 'नफीस से नफीस कारों को हो गया है जुकाम / तरावट में डूबी सड़कें कर रही थीं आराम।

नागार्जुन की वे राजनीतिक कविताएँ निश्चित ही लम्बी यात्रा करेंगी जहाँ वे अपने संवेदन को बिम्बों में प्रक्षेपित करते हैं और गहरे उतर कर स्थिति का जायजा लेते हैं। वे एक प्रतिबद्ध कवि हैं और 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' में इस शीर्षक से उनकी कविता भी है जहाँ वे अपनी प्रतिबद्धताओं को महज राजनीतिक चौहद्दी तक सीमित न करके उसे व्यापक मानवीय आयाम देते हैं : 'रूप-रस-गन्ध और स्पर्श से, शब्द से—नाद से, ध्वनि से, स्वर से, इंगित-आकृति से।' मार्क्सवाद को सौन्दर्यशास्त्र के स्तर पर पाने की कोशिश में हिन्दी कवियों की नयी पीढ़ी निराला, नागार्जुन या मुक्तिबोध की ओर देखती है। नागार्जुन प्रतिबद्ध हैं, पर मानवीय चिन्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के साथ और वे 'पोलेमिक्स' से आगे जाते हैं, उनके जड़ पूर्वाग्रह नहीं हैं। 'तुमने कहा था' की आरम्भिक कविता 'तुम रह जाते दस साल और' का मुहावरा व्यंग्य का है, पर अपेक्षाकृत निर्वैयक्तिक। अगली कविताओं में नागार्जुन नेहरू के व्यक्तित्व को अपने संवेदन की स्वीकृति देते हैं: "बिकता है गुलाब / करेगा प्यार कौन कंटाकित वृन्त को ? बिकता है गुलाब / समझेगा कौन / अन्तर्भेदी मुकुलित सौरभ ?" नागार्जुन का पूर्वाग्रहरहित कवि अपनी यायावरी, घूमन्तू प्रवृत्ति से निरन्तर सामग्री पाता है—प्रकृति के विराट सौन्दर्य से लेकर मानव जीवन के उतार चढ़ाव तक, और जीवन से उनकी ऐसी अन्तरंगता है कि कुछ भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं होता—मछुआरे की तरह जाल डाल कर वे मछलियाँ पकड़ ही लेते हैं। और यह गहरी जीवन सम्पृक्ति उनकी सम्पूर्ण रचनाशीलता का केन्द्रीय तत्त्व है।

नागार्जुन की कविताओं का ताना बाना देसी है, सम्पूर्ण रूप से देसी, कई बार कबीर की तरह अनगढ़। आधुनिक रचनाशीलता में दृष्टि के पार्थक्य के बावजूद वे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निकट आते हैं—दोनों ही परम्परा में निष्णात होकर भी जीवन के नये सन्दर्भों से जुड़े हुए; सहज, देशज, कबीर की तरह फक्कड़, मनमौजी। जब आधुनिकता के नाम पर रचना के शहरीकरण के खतरे हों तब नागार्जुन के रचना-संसार का देसी परिवेश अलग से अपनी पहचान बताता है। सामान्य जन यहाँ वक्तव्य के माध्यम से नहीं, संवेदन के स्तर पर उपस्थित है जैसा उन्होंने अपने आंचलिक उपन्यासों में किया है—लगभग ग्राफिक चित्र। नागार्जुन खतरों की राह चलते हैं और उनमें रचना-कर्म का द्वैत नहीं है, इसीलिए उनकी रचनाएँ मुखौटा लगा कर नहीं आतीं। उनकी प्रामाणिकता हमें आश्वस्त करती है और उनकी अभिव्यक्ति विश्वसनीय लगती है। यह विश्वसनीयता किसी भी रचना को सार्थकता देती है, अभिव्यक्ति की सीमाओं के बावजूद। नागार्जुन जब किसी मोहभंग में अपना रास्ता बदल देते हैं तो लगता है जैसे वे अपने ही पिछले वक्तव्य के विरोध में खड़े हैं, पर यह दलबदल अथवा प्रतिक्रियावादी रुख नहीं है, बल्कि एक ईमानदार कवि की आत्मस्वीकृति है। नागार्जुन के प्रजातान्त्रिक-जनवादी कवि को अन्यायी तानाशाही से घृणा है और वे इसका हर स्तर पर विरोध करते हैं। एक दृश्य के माध्यम से इसे कहा गया है; 'लगता है / हिन्द के आसमान में / अब सूरज सहम कर उगेगा / अपनी किरणें बिखेरेगा डरता-डरता काँपता।' हम स्वीकारते हैं कि कविताओं में कहीं कहीं गाली गलौज तक है, पर इसके मूल में कवि की आक्रोश भरी पीड़ा है और जहाँ कहीं नागार्जुन बिम्बों का सहारा लेते हैं वहाँ कविता काफी ऊपर उठती है, रुकती है, ठहरती है।

लोकजीवन की सम्पृक्ति ने नागार्जुन की कविताओं में लोक उपादानों का प्रवेश कराया है: सामान्य जन से अपने कथ्य की सामग्री प्राप्त करना, संवेदन को गहराना और देसी मुहावरे में अपनी बात कहना। लोकधुनों का उपयोग करते हुए वे कविता की अभिजात सीमाओं को तोड़ते हैं, कबीर की तरह। 'क्या हुआ आपको ?', 'किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है ?' आदि कई कविताओं में लोकगीतों की शैली का उपयोग किया गया है और नागार्जुन का कवि पाठक के साथ साथ श्रोता की तलाश करता भी दिखाई देता है, बिना अपने आशय का अवमूल्यन किए हुए। ये लोक उपादान कविता को रूमानी तेवर नहीं देने देते क्योंकि नागार्जुन सामाजिक यथार्थ के कवि हैं और वे अपना आक्रोश व्यंग्य के रूप में व्यक्त करते हैं। सचाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह है कि व्यंग्य उनकी कविता की मुख्य प्रवृत्ति है और वह मारक है—निर्मम और बेमुरौवत, हरिशंकर परसाई की तरह। व्यंग्य और नागार्जुन कई बार पर्याय जैसे लगते हैं, पर इस व्यंग्य के मूल में कवि की गहरी संवेदनशीलता है जो मानवीय चिन्ता से परिचालित है। एक ही कविता : 'अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' में व्यंग्य के कई टुकड़े हैं : सुस्त प्रतिपक्षी, पूजन करते निर्वाचित प्रभु, गुण गाते चारण, मुग्ध विभोर गीदड़-भालू, शेर-साँप, वीराने में मुखर ठूँठ, दिन में खिलती रजनीगन्धा, मँहगाई की सूपनखा, सोशलिज्म की नयी ऋचाएँ, दस बाँहों वाली देवी, कारतूसों की माला, मतवाले पंडों की थिरकन आदि। नागार्जुन का व्यंग्य सपाट नहीं है, वह गहरे उतरता है। टिकट पाने का एक दृश्य है, जिसमें रसलीन के प्रसिद्ध मुहावरे को नये सन्दर्भ में रखा गया है : 'श्वेत-स्याम-रतनार अँखियाँ निहार के / सिण्डकेटी प्रभुओं की पग-धूर झार के / लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के / खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के / आये दिन बहार के।' व्यंग्य सामाजिक विद्रूपता का पर्दाफाश करता है, पर चुनौती भी देता है। 'शासन की बन्दूक' की पंक्तियाँ हैं : 'जली ठूँठ पर बैठ कर गयी कोकिला कूक / बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक।' मुँहफट कविता में स्पष्टवादिता के लिए नागार्जुन बराबर याद किये जायँगे। 'प्रजातन्त्र का होम' में कुंडलियाँ शैली की पंक्तियाँ हैं : 'सामन्तों ने कर दिया प्रजातन्त्र का होम / लाश बेचने लग गये खादी पहने डोम।'

सामाजिक यथार्थ की गहरी पकड़ में नागार्जुन की कविताएँ कहानी का रूप ले लेती हैं—स्थिति का प्रमाणीकरण करती हुई, और अपने संवेदन के साथ उपस्थित। इस दृष्टि से यों तो कई कविताएँ विचारणीय हैं, पर 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' की अन्तिम कविता 'हरिजन गाथा' सबसे प्रभावी है। ऊँची जातियों वाले लोगों ने कई हरिजनों को एक विराट चिताकुंड में जिन्दा झोंक दिया। और पिता के चले जाने पर बँधुआ मजदूरों के यहाँ अभागे हरिजन नवजातक के आने की बात। उसके विषय में भविष्यवाणी कि : 'सबके दुख में दुखी रहेगा / सबके सुख में सुख मानेगा / समझ बूझ कर ही समता का / असली मुद्दा पहचानेगा।' इसे कवि अग्निपुत्र कहता है और : 'दिल ने कहा—अरे यह बालक / निम्न वर्ग का नायक होगा / नयी ऋचाओं का निर्माता / नये वेद का गायक होगा।' 'हरिजन गाथा' को हम इस दृष्टि से एक सम्पूर्ण कविता कह सकते हैं जो बात कभी निराला ने पन्त की 'परिवर्तन' कविता के लिए कही थी। यह कविता अपने समय की एक मर्मान्तक त्रासदी से उपजी है और इसने कवि को झकझोर दिया है। आहत संवेदन हरिजन की दयनीय दशा को सहानुभूति के साथ उरेहता है—सामाजिक यथार्थ को पूरी स्वीकृति देता हुआ : 'जीवन गुजारेगा हैवान की तरह / भटकेगा जहाँ तहाँ बनमानुस जैसा / अधपेटा रहेगा अधनंगा डोलेगा / तोतला होगा कि साफ साफ बोलेगा।' यहाँ नागार्जुन एक लोकप्रचलित प्रयोग करते हैं कि रैदासी कुटिया के अधेड़ सन्त गरीबदास से भविष्यवाणी कराते हैं और चमरटोली में जन्म लेने वाले भावी शिशु के विषय में क्रान्तिकारी भविष्यवाणी कराते हैं। यह कवि की प्रतिबद्धता है और उसका काव्य स्वप्न भी : 'श्याम सलोना यह अछूत शिशु / हम सबका उद्धार करेगा / आज सही सम्पूर्ण क्रान्ति का / बेड़ा सचमुच पार करेगा।'

नागार्जुन ने व्यक्तियों को केन्द्र में रख कर भावुक कविताएँ रची हैं और 'प्यासी पथराई आँखें' की आरम्भिक दो कविताएँ निराला के व्यक्तित्व की सही अभिव्यक्ति हैं—रामविलास शर्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथवा शिवमंगलसिंह 'सुमन' की तरह। 'आए कोई तुमसे सीखे' की पंक्तियाँ हैं : "कोई आए तुमसे सीखे / वह द्वापर वाली शरशय्या की चुभन आज / आए कोई तुमसे सीखे / युग का हालाहल पीना / आए कोई तुमसे सीखे, यह रक्तदान / आए कोई तुमसे सीखे यह स्वाभिमान।" निराला ने अपने अन्तिम काव्य-संकलन 'सान्ध्य काकली' में अपने विषय में स्वयं कहा है : 'ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर……।' नागार्जुन ने गाँधी, नेहरू, लेनिन, शास्त्री, राजकमल, वल्लतोल, शैलेन्द्र आदि पर कविताएँ लिखी हैं जहाँ उन्होंने व्यक्ति के केन्द्रीय तत्त्व को पकड़ना चाहा है। व्यक्ति के इर्दगिर्द रची गयी कविता कितनी निर्वैयक्तिक हो सकती है, इसका प्रमाण है शास्त्री जी को समर्पित आरम्भिक पंक्तियाँ : "सब खड़े रहे उसकी बलिवेदी के समीप / लो चली गयी बिल्कुल ऊपर / रह गया रिक्त आकाशदीप। अथवा वह परम अकिंचन, कर्मवीर, वह सत्यसंघ / वह बारूदी बदबू पर ताजी, मलयगन्ध।' यहाँ कवि युद्ध की भर्त्सना करता हुआ शान्ति का पक्ष लेता है। राजकमल को समर्पित उनकी लम्बी कविता, 'अच्छा किया उठ गये हो दुष्ट' एक कविमित्र के प्रति संवेदना से उपजी है, जहाँ कविकर्म के संकट का संकेत है, निराला की 'सरोज स्मृति' जैसा। यहाँ नागार्जुन जर्जर व्यवस्था पर चोट करते हैं और मूल्यों की लड़ाई लड़ने वाले कवि को अपना स्नेह देते हैं : 'निर्धूम अग्नि के मध्य / तुम्हारा यह आत्मदाह।' और कवि स्वयं को धिक्कारता है : 'पा गये हो छुटकारा / भवसागर के थपेड़ों से / अपना तो भई थेथर है / निर्लज्ज, वेहया, कठजीव / मरेंगे नहीं जल्दी।' मनुष्यों की परिधि से आगे जाकर नागार्जुन ने मोतिया नेवला, मधुमती गाय को अपनी कविताओं में बाँधा है जो उनकी जेल-जिन्दगी के साथी थे। इससे कवि के व्यापक संवेदन का पता चलता है।

सामाजिक-राजनीतिक कविताओं के बीच एक और यात्री नागार्जुन हैं जो आज भी प्रकृति-दृश्यों में रमते-झूमते हैं। आज जब शहरीकरण के कारण कविता प्रकृति से दूर होती जा रही है, तब नागार्जुन के इन प्रकृति-चित्रों की ओर ध्यान दिलाना और भी जरूरी है। पावस, कदम्ब, घनकुरंग, मेघ, खिले पात, जादुई परस ('तुमने कहा था'), वसन्त, सुबह, चाँदनी, हरे पात ('खिचड़ी विप्लव देखा हमने') आदि प्रकृति-दृश्य हैं। यहाँ कवि अपनी पूरी संलग्नता के साथ एक दृश्य को सघनता से बाँधता है लगभग चित्र बनाता हुआ, संवेदन के स्तर पर : "हिल रही, डुल रही, खिल रही / खुल रही पूनम की फागुनी रात / पकड़ी ने ढक लिए अपने सब गात / या चिर आकुल रोते प्राणों में / भर गया न जाने कितना रस / हिय आँगन में उतरे जाने / किन सुधियों के छौने सारस / जादुई परस / जादुई परस।" प्रकृति नागार्जुन की चिरपरिचित है और राजनीति यदि उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का आक्रोश झेलती है तो प्रकृति उनके विराट मानव संसार का अविभाज्य हिस्सा है जिसमें वे अब भी डूबते उतराते हैं। सचाई यह है कि प्रकृति उन्हें नयी नयी सामग्री देती है जिसका वे दृश्यों, बिम्बों, प्रतीकों के रूप में उपयोग करते हैं और अपने रचना संसार को निरन्तर समृद्ध करते चलते हैं। नागार्जुन अपनी कविता का मुहावरा जिन्दगी से सीधे ही उठा लेते हैं और उसे कविता में अपनी सर्जनात्मक क्षमता से खपा देते हैं। कविता के गद्य का संस्करण बनते हुए समय में नागार्जुन की छन्द और लय की सही पहचान विशेष रूप से हमारा ध्यान अपनी ओर खींचती है—छन्द पर नियन्त्रण की क्षमता। नागार्जुन की कविता भाषा के आभिजात्य को ललकारती हुई आगे बढ़ती है, जिन्दगी के बीच से पाए गए मुहावरे में अपनी बात कहती हुई, और यही हमें आश्वस्त करता है कि उनकी रचनायात्रा लम्बी और सार्थक होगी ●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्द जहाँ सक्रिय हैं[1]

नन्दकिशोर नवल

'तुमने कहा था' नागार्जुन की 1964 ई० से 1977 ई० के बीच लिखी गयी बावन कविताओं का संग्रह है। इनमें अधिकांश कविताएँ चूँकि राजनीतिक हैं, इसलिए प्रस्तुत समीक्षा को राजनीतिक कविताओं पर ही केन्द्रित किया गया है।

प्रगतिशील कवि का एक निश्चित राजनीतिक दृष्टिकोण होता है जिससे वह तमाम चीजों को देखता है। इस कारण राजनीतिक कविताएँ लिखना उसके लिए सर्वथा स्वाभाविक है। जो प्रगतिशील कवि सीधे राजनीति को विषय नहीं बनाते, वे भी गहराई में राजनीति से प्रेरित होते हैं। यह राजनीति उनकी मूल्य चेतना में व्याप्त होती है और उन्हें तरह तरह से प्रभावित और निर्दिष्ट करती रहती है। नागार्जुन प्रगतिशील कवियों के सिरमौर हैं। खास बात यह है कि उनमें वे राजनीतिक दृष्टि से सर्वाधिक सजग हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक उथल पुथल के युग में वे भारी संख्या में राजनीतिक कविताएँ लिखते हैं तो यह उनके लिए आकस्मिक नहीं है। राजनीतिक कविताओं को साहित्य में अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता है। कारण यह कि उनमें राजनीति बहुत स्पष्ट रूप में आती है और उनकी शैली में प्राय: एक ऐसा 'सीधापन' होता है, जो अभिजात साहित्यिक रुचि को बर्दाश्त नहीं होता है।

नागार्जुन ने कुछ कविताएँ देशी-विदेशी राजनीतिक नेताओं पर लिखी हैं। ऐसी कविताओं में उन्हें वहीं सफलता मिली है, जहाँ वे नेताओं को ठीक से जानते रहे हैं। जहाँ वे नेताओं को ठीक से नहीं जानते, उनके चरित्र और उनके कार्य से पूरी तरह परिचित नहीं रहे हैं, वहाँ उनकी प्रतिक्रिया सरल हो गयी है। प्रमाण स्वरूप जवाहरलाल नेहरू और इन्दिरा गाँधी से सम्बन्धित उनकी कविताएँ देखी जा सकती हैं। नेहरू पर उनकी प्रसिद्ध कविता है 'तुम रह जाते दस साल और'। इसमें उन्होंने पूँजीवादी नेता के चरित्र का जो मूल्यांकन किया है, वह सही होते हुए भी अन्ततः एकपक्षीय है। नेहरू पर उनकी और कविताएँ भी हैं, उदाहरण के लिए 'विकल है गुलाब' और 'विजयी हुआ वसन्त'। 'तुम रह जाते दस साल और' से इन कविताओं की तुलना करने पर यह पता चलता है कि उस कविता और इन कविताओं में कोई तालमेल नहीं है। जैसे 'तुम रह जाते दस साल और' में वे नेहरू को पूरी तरह से अस्वीकार कर देते हैं, वैसे ही 'विकल है गुलाब' और 'विजयी हुआ वसन्त' में वे उन्हें पूरी तरह से स्वीकार कर लेते हैं। यही बात इन्दिरा पर लिखी गयी उनकी कविताओं में भी देखी जा सकती है। 1969 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विभाजन के समय उन्होंने इन्दिरा के स्तवन में यह कविता लिखी थी : "नहीं चलेगा नहीं चलेगा रगड़ा-रगड़म्। / महिषमर्दिनी का त्रिशूल है तगड़ा-तगड़म्।" (यह कविता इस संग्रह में संगृहीत नहीं है।) एक-दो वर्षों के बाद ही उन्होंने इन्दिरा-विरोधी अपनी यह लम्बी कविता लिखी : 'अब तो बन्द करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन।' इस कविता में उन्होंने इन्दिरा के महिषमर्दिनी रूप की जगह उनका यह जनमर्दिनी रूप प्रस्तुत किया :

---

1. तुमने कहा था, देखें, पृ० 34

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कातूँसों की माला होगी, होगा दृश्य अनूप
हथगोला-पिस्तौल-स्टेनगन सज्जित चंडीरूप
अबकी अष्टभुजा का होगा खाकीवाला भेष
श्लोकों में गूँजेंगे अबकी फौजी अध्यादेश

सम्पूर्ण क्रान्ति के आन्दोलन के दौर में और उसके बाद जयप्रकाश पर उन्होंने जो अनेक कविताएँ लिखी हैं, उनमें यह असंगति और प्रकट है। किसी भी वस्तु को ठीक से जानने के लिए वैज्ञानिक दृष्टि आवश्यक है। उसके अभाव में वस्तु हो, या घटना, या व्यक्ति, उसे उसकी पूर्णता या जटिलता में नहीं समझा जा सकता। पहली दृष्टि में जो दिखलायी पड़ता है, वही सही हो, यह आवश्यक नहीं है। एंगेल्स ने एक पत्र में अपने मित्र कोनराड श्मिट को लिखा था कि आर्थिक, राजनीतिक और अन्य प्रकार के प्रतिबिम्ब भी आँखों में बननेवाले प्रतिबिम्ब की तरह ही होते हैं। आँखों में बननेवाले प्रतिबिम्ब एक उन्नतोदर ताल से होकर गुजरते हैं इसलिए उलटे नजर आते हैं, अपने सिर पर खड़े। हमारा स्नायु-यन्त्र हमारी कल्पना में उन्हें फिर अपने पाँव पर खड़ा कर देता है। (सिलेक्टेड लेटर्स, कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, पेंकिंग, पृ० 79) नागार्जुन अपनी राजनीतिक कविताओं में वहीं चूकते हैं, जहाँ वे वैज्ञानिक दृष्टि छोड़कर पहली दृष्टि में जो दिखलाई पड़ता है, उसी को सही मान लेते हैं। इसी कारण एक बार एक नेता को वे हृदय के सिंहासन पर बैठा कर दूसरी बार उसे उठा कर नाली में फेंक देते हैं, या पहली बार जिस नेता को नाली में फेंक देते हैं, दूसरी बार उसे उठा कर हृदय के सिंहासन पर बैठा लेते हैं। कुछ समीक्षों का कहना है कि नागार्जुन समझदारी से कम काम लेते हैं और भावुकता के प्रवाह में जनता के साथ होकर उसके मन में नेताओं के प्रति समय-समय पर जो भाव उठा करते हैं, उन्हें शब्दों में प्रकट कर देते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा कहना यह है कि वे वातावरण के साथ रंग बदलने वाले कवि नहीं हैं और उनका अपना रंग है, जो कि बहुत गहरा है। इसका प्रमाण उनकी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें वे केवल जनता के भावों को शब्दों में प्रकट नहीं करते, बल्कि अपने दृष्टिकोण के साथ तमाम चीजों का मूल्यांकन करते और उन्हें रखते हैं। इससे यह साबित होता है कि यदा कदा उनसे चूक होती है। जिन नेताओं का चरित्र उनका अच्छी तरह से समझा हुआ होता है, उन पर लिखी गयी कविताओं में असंगति देखने को नहीं मिलती। ऐसी कविताएँ स्वभावतः प्रभाव की दृष्टि से भी बीस होती हैं।

'तुमने कहा था' की नेताओं पर लिखी गयी अन्य उल्लेखनीय कविताएँ हैं—'तुमने कहा था', 'रूठ के चली गयी बुआ', 'आतुर जीव की प्रार्थना सुनेगा कौन ?' 'माइ डियर दद्दू हमारे' और 'हुआ ! हुआ !! हुआ !!!' इन कविताओं में जटिलता है क्योंकि इनमें नागार्जुन ने जिन नेताओं पर कविता लिखी है उनके चरित्र की जटिलता में प्रवेश किया है। 'तुमने कहा था' शीर्षक कविता के विषय नेहरू ही हैं, पर यह कविता नेहरू पर लिखी गयी नागार्जुन की कविताओं में विशिष्ट है, क्योंकि इसमें नेहरू की सदिच्छा और उनकी पूँजीवादी राजनीति के कारण उसकी व्यर्थता दोनों का चित्रण किया गया है। इस कविता की अन्तिम पंक्तियाँ हैं :

हमने तुम्हारी अन्तिम इच्छा के अनुरूप
किये हैं भस्म-कलशों के विसर्जन…

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन, अब इस वक्त
एक बात उठ रही है मन के अन्दर
किससे कहूँ ?
देगा जवाब कौन ?…
राखवाली जमीन में
निश्चित ही उपजेंगे प्रचुर अन्न…
लेकिन टिड्डियों का हमला रुकेगा कैसे ?
राखवाली नदी का जल
निश्चित ही अधिक निर्मल होगा…
लेकिन, मगर कहाँ जाएँगे ?

1942 ई० में निराला ने अखिल भारतवर्षीय महिला सम्मेलन की सभानेत्री विजयलक्ष्मी पंडित को सम्बोधित कर एक कविता लिखी थी, जिसमें उन्होंने कहा था : "जीवन की ज्यों छुटी शक्ति आरक्ति से भरी—/ नभश्चुम्बिनी उतरी क्षिति पर किरण की परी"। नागार्जुन ने उसके करीब पच्चीस वर्षों के बाद उन पर एक कविता लिखी है, जो निराला की कविता से बिलकुल भिन्न है। निराला की कविता में विजयलक्ष्मी पंडित जहाँ उपनिवेश-विरोधी जनवादी नेता के रूप में आती हैं, वहाँ नागार्जुन की कविता में पतनशील पूँजीवाद की एक नेता के रूप में, जो देश को अमरीका का नये ढंग का उपनिवेश बना देना चाहती हैं। नागार्जुन की 'रूठ के चलो गयी बुआ' कविता एक घटना से सम्बन्धित है। वह घटना यह कि विजयलक्ष्मी पंडित ने, जो कि संसद्सदस्या थीं, संसद् से त्यागपत्र दे दिया था और इस तरह संसदीय राजनीति से अपने को अलग कर लिया था। नागार्जुन इस घटना को विषय बनाकर कविता लिखते हैं और उसके माध्यम से पूँजीवादी नेता के जटिल चरित्र को उघाड़ कर रख देते हैं। कविता इन्दिरा की जुबानी है, क्योंकि वे उन्हीं की बुआ हैं। इसका आरम्भिक अंश है :

जाने क्या तो हुआ !
रूठ के चली गयी बुआ !!
और भी बुजुर्ग हैं, करते रहेंगे जुगाली
बुआ के विना मगर सदन लगे खाली
जाना था तो कहके जातीं
जल्दी भी क्या थी, रहके जातीं
हमने तो कभी उन्हें माना नहीं गैर
हो रही थीं बोर तो कर आतीं सैर…

इस कविता की विशेषता यह है कि इसका व्यंग्य दोतरफा है। एक तरफ इसमें विजयलक्ष्मी पंडित पर व्यंग्य है, तो दूसरी तरफ स्वयं इन्दिरा पर। विजयलक्ष्मी पंडित पर यह व्यंग्य है कि उन्होंने संसद् की सदस्यता से इसलिए त्यागपत्र दे दिया कि उससे उनका स्वार्थ नहीं सिद्ध हुआ। इस त्यागपत्र से उन्होंने संसद् को नीचा दिखलाया, क्योंकि वह देश की सर्वोच्च संस्था है और किसी नेता की स्वार्थ-सिद्धि के लिए नहीं, बल्कि जनता के कल्याण के लिए बनी है। इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अलावा उन पर यह भी व्यंग्य है कि भारत में जन्म लेकर भी उनका दिमाग पश्चिमी देशों के साँचे में ढलता गया है, जिससे भारतीय संसद् उनके भीतर ऊब पैदा करती है। इस ऊब को दूर करने का तरीका उनके लिए है अमरीका जैसे देशों का चक्कर लगाना। इन्दिरा पर इस कविता में यह व्यंग्य है कि वे संसद् की अवमानता को नहीं, बल्कि इस बात को महत्त्व देती हैं कि विजयलक्ष्मी पंडित के त्यागपत्र से अपनी पार्टी की एक सीट हाथ से निकल जाने की आशंका पैदा हो गयी है। दूसरे, ऊपर से समाजवाद का नारा लगाते हुए भी वे पूरी तरह से साम्राज्यवाद-विरोधी नहीं हैं, क्योंकि वे विजयलक्ष्मी पंडित को उनकी अमरीकापरस्ती के बावजूद गैर नहीं मानतीं। 'आतुर जीव की प्रार्थना सुनेगा कौन ?' कविता प्रसिद्ध जनसंघी नेता अटलविहारी वाजपेयी पर लिखी गयी है। उस समय वे जनता सरकार में विदेश मन्त्री थे और अमरीकी-चीनी साँठ गाँठ से उत्साहित होकर अपने सारे राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय स्वाभिमान को तिलांजलि देकर चीन के साथ मैत्री स्थापित करना चाहते थे। इसके लिए वे चीन यात्रा करने को बेचैन थे। उनका उद्देश्य था सोवियत विरोधी अमरीकी-चीन-पाक मोर्चे का भारत को भी एक घटक बना देना। नागार्जुन ने दुनिया के देशों का लगातार चक्कर लगाने वाले विदेश मन्त्री की बेंत की डलिया में दुबके तिलचट्टे के माध्यम से वाजपेयी पर इन शब्दों में प्रहार किया :

यही रह गया बाकी !
जी हाँ, बाकी बचा यही !
वरना वो सारी दुनिया के
चक्कर लगा चुका है
दसियों बार...।
अदना-सा बेचारा जीव
निहायत मामूली, नाचीज
भला किसको नहीं आती है घिन !
नफरत के मारे सुलग उठता है रोआँ रोआँ
बदनसीब बेचारा !!
जी हाँ, वो अबकी वहाँ भी पहुँचेगा
जी हाँ, पहुँच के रहेगा
निहाल हो जाएगा
'पंचशील' की खुशबू में
तरोताजा होकर ...।

और लोग जहाँ वाजपेयी की चीन यात्रा को चीन के साथ भारत के सम्बन्धों को सामान्य बनाने के उद्देश्य से की जाने वाली सामान्य यात्रा समझ रहे थे, नागार्जुन ने वहाँ उसके पीछे छिपी समाजवाद विरोधी कुत्सित राजनीति को भाँप लिया था और इस तरह राजनीतिक यथार्थ के परिपक्व बोध का परिचय दिया था। यही इस कविता की विशेषता है। युगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जन्मदाताओं में थे और शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए सतत सचेष्ट रहते थे। गुटनिरपेक्षता और शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व का सारतत्त्व साम्राज्यवाद-विरोधी है इसलिए उनकी इससे सम्बन्धित कार्यवाहियों के लिए मन में आदर का भाव होना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वाभाविक है, लेकिन जब उन्होंने सह-अस्तित्व के नाम पर साम्राज्यपक्षी और साम्राज्य-विरोधी शक्तियों की असली पहचान को धुँधला बना देना चाहा, तो नागार्जुन ने उन्हें भी नहीं बख्शा और 'माइ डियर दद्दू हमारे' शीर्षक एक चुभती हुई कविता लिखी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ हैं :

माइ डियर दद्दू हमारे
मार्शल टीटो ऽऽऽ।
मैत्री की चादर को ज्यादा न पछीटो।
सह-अस्तित्व की लकीर पीटो।
हुआ के माथे पर दूब अच्छत छींटो।

अन्तिम पंक्ति में टीटो के चीन सम्बन्धी रुख की आलोचना ध्यान देने लायक है। 'हुआ ! हुआ !! हुआ !!!' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष की आलोचना तो की ही है, चीन के प्रति जनता सरकार और सम्पूर्ण क्रान्ति के पुरोधा जयप्रकाश नारायण के रुख की भी आलोचना की है। जयप्रकाश ने कहा था कि हमारे आर्थिक विकास का मार्ग सोवियत संघ का बड़े उद्योगों वाला मार्ग न होकर चीन का लघु उद्योगों वाला मार्ग ही हो सकता है। इतना ही नहीं, उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा की थी कि महात्मा गाँधी और माओत्से तुंग के कथनों के नीचे से उनके नाम हटा दिए जाएँ तो कहना मुश्किल होगा कि कौन कथन किनका है। नागार्जुन ने अपने व्यंग्य में हुआ, सम्पूर्ण क्रान्ति और उसकी सन्तान जनता सरकार सबको एक साथ लपेटा है :

हुआ ! हुआ !! हुआ !!!
तुमने तो चाँद को छुआ !
सफाई से जीत गए जुआ…
क्या करेगा तुम्हारा कन्फूशियस मुआ !
मैं तो भला लूँगा ही लूँगा
सम्पूर्ण क्रान्ति का अपना पुआ…
माओ की 'आत्मा' से माँगता हूँ यही तो दुआ !

कविता के अन्त में जनता सरकार पर जो व्यंग्य है, वह बेमिसाल है। उसका सन्दर्भ यह है कि भारतीय जनता ने जिन मोरारजी देसाई-जैसे दक्षिणपन्थी प्रतिक्रियावादी नेताओं को उठाकर घूरे पर फेंक दिया था, वही मौका पाकर अपने को जनता का हित बतला कर सत्ता में आ गये थे। नागार्जुन हुआ को जैसे यह खुशखबरी सुनाते हुए कहते हैं :

यहाँ तो, जो, अपने गाँव में
जाने क्या तो हुआ
कलवाली डायन वो
निकल आयी हमारे बच्चों की बुआ !

इन उद्धरणों से यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि नागार्जुन की नेताओं पर लिखी गयी अनेक राजनीतिक कविताओं में कैसी जटिलता है।

नेताओं के अलावा नागार्जुन ने अनेक कविताएँ विभिन्न राजनीतिक समुदायों पर लिखी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं, उदाहरणार्थ 'बतला दो बापू, क्या थे तुम ?' 'तीनों बन्दर बापू के', 'हो गए बारह महीने', 'घटकवाद की उठा पटक है', 'फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवर' आदि कविताएँ। इन कविताओं में अनेक शिथिल स्थल हैं, पर बीच-बीच में ऐसी पंक्तियाँ आती हैं, जो अपनी वेधकता और व्यंजकता की दृष्टि से बेजोड़ होती हैं। 'बतला दो बापू, क्या थे तुम ?' महात्मा गाँधी के अनुयायियों की आलोचना में लिखी गयी कविता है। महात्मा गाँधी का अनुयायी होने का दावा एक ओर काँगरेसी करते हैं दूसरी ओर सर्वोदयी। नागार्जुन दोनों में 'ग्रहण' और 'दान' को लेकर जो असंगति है उसकी ओर संकेत हुए दोनों पर चोट करते हैं :

निर्वाचन के हो-हल्ले में
खो गया हाय बहरा विवेक,
आपाधापी में सबकी है—
कैसे भी जीतूँ, यही टेक।
इस रेल-पेल में, सोचो तो
कैसे लगते हैं जिला-दान !
मैं समझ न पाया हूँ अब तक
वह हीनयान, यह महायान।

छठे-सातवें दशक में सर्वोदयियों की एक अच्छी खासी फौज खड़ी हो गयी थी। नागार्जुन इसे गाँधीवाद का 'महायान' कहते हैं। यह भी ध्यातव्य है कि 'तीनों बन्दर बापू के' शीर्षक कविता विनोबा, मोरारजी देसाई और जयप्रकाश—जैसे नेताओं को विषय बनाकर लिखी गयी है, लेकिन इसे इन तीन नेताओं तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। यह वस्तुतः उस पूरे नेतृ-समुदाय को लक्ष्य करके लिखी गयी है, जो अपने को महात्मा गाँधी की विरासत का दावेदार घोषित करता है। इस कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल
इधर जमे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल

'हो गए बारह महीने' जनता शासन की वर्षगाँठ के मौके पर लिखी गयी कविता है। इसमें नागार्जुन शासन-वर्ग के सत्ता-भोग पर प्रहार करते हुए कहते हैं : "नील नभ में उड़े तुमको / तृप्ति-रस में जुड़े तुमको / कुंजवन में मुड़े तुमको/ हो गए बारह महीने / हो गए बारह महीने"। 'घटकवाद की उठा-पटक है' कविता भी जनता पार्टी को ही विषय बनाकर लिखी गयी है। इसकी अन्तिम पंक्तियों में वे जनता पार्टी की निष्क्रियता और आपसी कलह की चर्चा इन शब्दों में करते हैं : "करनी सीताराम सटक है / घटकवाद की उठा-पटक है।" 'फैल गया है दिव्य मूत्र का लवण सरोवर' कविता जनता पार्टी के विघटन के समय लिखी गयी थी। उस समय पतनशील पूँजीवादी राजनीति का घिनौना रूप उभर कर सामने आ गया था। खरीद-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फरोख्त, जोड़-तोड़ और राजनीतिक तिकड़म का बाजार गर्म था। नागार्जुन ने इस कविता में पूँजीवादी शासक-वर्ग को बेपर्द करने वाले अनेक चित्र अंकित किये। उनमें से एक दर्शनीय चित्र है : "पुतले हैं वे, स्वार्थ-सूत्र में टँगे हुए हैं / छैल-छबीले जादूगर हैं, रँगे हुए हैं"।

समुदाय विशेष को विषय बना कर लिखी गयी 'तुमने कहा था' की अन्य उल्लेखनीय कविताएँ हैं—'आए दिन बहार के', 'शासन की बन्दूक', '26 जनवरी, 15 अगस्त', 'मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा' और 'रहे गूँजते बड़ी देर तक'। 'आये दिन बहार के' में पूँजीपति-वर्ग की राजनीतिक पार्टी काँगरेस के नेतृ समुदाय पर व्यंग्य किया गया है, जो सत्ता की आकांक्षा से प्रेरित होकर चुनाव में टिकट पाने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता है। इस कविता का आरम्भिक अंश है : " 'स्वेत-स्याम रतनार' अंखियाँ निहार के / सिंडीकेटी प्रभुओं की पग-धूर झार के / लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के / खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के / आए दिन बहार के।" इन पंक्तियों में काँगरेस की सम्पूर्ण राजनीति बेपर्द हुई है। काँगरेस में टिकट सिद्धान्त और आचरण के बल पर नहीं, बड़े नेताओं की खुशामद के बल पर मिलता है; टिकट प्रार्थी प्रादेशिक नेताओं को केन्द्रीय नेताओं की आँखें रीतिकालीन नायिकाओं की आँखों से कम नहीं मालूम पड़तीं; ये टिकट-प्रार्थी नेता स्वार्थ को सबसे ऊपर रखने के कारण 'सिंडीकेट' के नाम से कुख्यात गुट के दक्षिणपन्थी नेताओं की चरण धूलि लेने से भी बाज नहीं आते; काँगरेस का टिकट मिलने का मतलब होता है चुनाव में जीत और चुनाव में जीत का मतलब होता है सत्ता के उपभोग का रास्ता खुल जाना। ये तमाम बातें नागार्जुन ने इस उद्धरण की पाँच छोटी-छोटी पंक्तियों और तीन वाक्यों में अत्यन्त तीखे ढंग से कह दी हैं। 'शासन की बन्दूक' कविता काँगरेसी सरकार द्वारा किये जाने वाले जनता के दमन और जनता द्वारा किये जाने वाले उसके प्रतिरोध को विषय बना कर लिखी गयी है। सरकारी दमन का रूप यह है : "खड़ी हो गयी चाँपकर कंकालों की हूक / नभ में विपुल विराट-सी शासन की बन्दूक"। इसका जनता द्वारा प्रतिरोध किया जाता है जिसमें अन्ततः वह विजयी होती है। इसका वर्णन इस प्रकार है : "जली ठूँठ पर बैठ कर गयी कोकिला कूक / बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक"। इस कविता में शासक वर्ग का तानाशाही रवैया, विनोवा जैसे सन्तों का शासन के डर से चुप्पी मार जाना, सत्य अहिंसा के प्रति शासक वर्ग की झूठी प्रतिबद्धता और जनता द्वारा किया गया दमन का प्रतिरोध यह सब कुछ वर्णित है, जिससे यह कविता पूँजीपति वर्ग के शासक चरित्र का नग्न रूप दिखलाने वाली कविता होने के साथ साथ देश में चलने वाली वर्ग शक्तियों की टकराहट की कविता हो गयी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्ग दृष्टिकोण से नागार्जुन ने बहुत शीघ्र समझ लिया था कि जनता पार्टी और जनता सरकार नाम और रूप बदल कर पूँजीपति वर्ग की ही पार्टी और सरकार है। जनता शासन के दिनों में उन्होंने '26 जनवरी, 15 अगस्त' शीर्षक कविता लिखी और उसमें कहा :

सेठ है, शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियाँ भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झूठा मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा लबार है
जैसे भी टिकट मिला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जहाँ भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वो ही सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पन्द्रह अगस्त है
बाकी सब दुखी हैं, बाकी सब पस्त हैं···

नागार्जुन समाजवादी विचारधारा के कवि हैं, इसलिए उन्होंने 'मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा' शीर्षक कविता में उनलोगों का आह्वान किया है, जो क्रान्तिकारी वर्ग के रूप में संगठित होकर देश को पूँजीवादी शासन से मुक्ति दिलाएँगे। इसमें उन्होंने कहा है :

आओ, खेत मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान
आओ, कैंप के छात्र और फैकल्टियों के नवीन प्रवीण प्राध्यापक
हाँ, हाँ, तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे हैं
आगामी युगों के लिवरेटर

नागार्जुन रूमानी कवि नहीं है इसलिए उन्होंने अपने को विषय बनाकर बहुत कम कविताएँ लिखी हैं। उनकी जो ऐसी कविताएँ हैं, वे भी यथार्थ की नयी चेतना से ओत प्रोत हैं। अपनी कविताओं को कभी कभी वे व्यक्तिगत स्पर्श जरूर प्रदान करते हैं, जिससे उनमें गजब का जोर आ जाता है। उक्त कविता की अन्तिम पंक्तियों में यह बात देखते ही बनती है :

आओ भई, सामने आओ !
मैं तुम्हारा चुम्बन लूँगा
मैं तुममें से एक एक का सिर सूँघूँगा
आओ भई, सामने आओ।
मुझ पगलेट के साथ बातचीत करो
हँसो-खेलो मेरे साथ
मैं तुम्हारी जूतियाँ चमकाऊँगा
दिल बहलाऊँगा तुम्हारा
कुछ भी करूँगा तुम्हारे लिए···
मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूँगा।···

वियतनाम साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वाधीनता और समाजवाद के लिए किए जाने वाले संघर्ष का प्रतीक बन गया था। नागार्जुन ने एक बार मजदूरों की बस्ती में यह अभूतपूर्व दृश्य देखा :

छोटी छोटी झंडी थामे मुन्ने प्यारे प्यारे
अग्रज पीढ़ी की अनुकृति में लगा रहे थे नारे :
मेला नाम विएनाम
तेला नाम विएनाम
विएनाम विएनाम
विएनाम विएनाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस दृश्य ने उनके ऊपर बहुत प्रभाव डाला। इसने उनके भीतर यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि ये बच्चे आगे चल कर वर्ग-चेतन मजदूर होंगे और "निर्भय होकर शोषण की बुनियादें यह खोदेंगे /···बेबस बूढ़े विप्लवियों का कालिख यह धो देंगे /···फिरकाबन्दी जातिवाद का झाड़ेंगे यह भूत /···निबिड़ विषमता को मिटायेंगे नवयुग के शिशु दूत।" इस प्रकार नागार्जुन ने व्यक्ति और वर्ग दोनो को विषय बनाकर राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं, जो अपने प्रभाव में अमोघ हैं। यह कहना बिलकुल सही है कि ऐसी कविताएँ क्रियाशील कविताएँ हैं और उनसे जो काम होता है, वह साहित्यिक कविताओं से नहीं हो सकता।

ऊपर नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं के जो उद्धरण दिये गये हैं उनसे यह स्पष्ट है कि ऐसी कविताओं में उनका सबसे बड़ा साधन होता है हास्य और व्यंग्य। हास्य बहुत ही जोरदार अस्त्र है। जो अपने को सर्वशक्तिमान समझते हैं, वे भी इस अस्त्र के प्रयोग से डरते हैं। यह उसकी घातकता का प्रमाण है। हास्य व्यक्ति, वस्तु या घटना के ऊपर से पर्दा उठाकर केवल उसका असली रूप दिखला देने वाला साधन नहीं है। यह उसके साथ साथ आनन्द और उत्साह का अक्षय स्रोत है, जो जीवन और उसकी सार्थकता में मनुष्य के विश्वास को बरकरार रखता है। ऊपर 'बतला दो बापू, क्या थे तुम ?' शीर्षक जिस कविता से उद्धरण दिया गया है, उसी में नागार्जुन कहते हैं : "छोड़ो इस दिल में क्या-क्या है, / नाहक ही अन्दर धँसते हो !" उनकी कविता के ऊपर हास्य छलकता है, पर निश्चय ही उसके भीतर घृणा, आक्रोश और करुणा की धारा बहती है। लेकिन यह सही है कि नागार्जुन हँसते हैं; उन्हें उनका यह विश्वास हँसा देता है कि आज जो भी मनुष्य को नष्ट करने पर तुला हुआ है, वह नष्ट होकर रहेगा, वह मनुष्य को नष्ट नहीं कर सकता। यहाँ अज्ञेय-जैसे कवियों से उनकी तुलना कर हम समझ सकते हैं कि वे जहाँ हँसते हैं, वहाँ अज्ञेय-जैसे कवि क्यों नहीं हँसते। बात स्पष्ट है कि अज्ञेय-जैसे कवियों के पास न उन जैसा भविष्य का सुखमय स्वप्न है, न उसे सत्य बनाने वाली शक्तियों की पहचान, न अतीत और वर्तमान के बोध से पाया हुआ यह दृढ़ विश्वास कि वह स्वप्न सत्य होकर रहेगा। स्वभावतः अज्ञेय-जैसे कवि उदासी और निराशा में डूबे रहते हैं, या फिर गम्भीर बने रहते हैं, जबकि नागार्जुन हृदय में घृणा, आक्रोश और करुणा लिए भी हँसते रहते हैं।

नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में हास्य का आधार है हमारे राजनीतिक जीवन का अन्तर्विरोध। यह अन्तर्विरोध पूँजीवादी और समाजवादी राजनीति के बीच का अन्तर्विरोध है। पूँजीवादी राजनीति अपना सकारात्मक सार-तत्त्व खोकर अब पूरी तरह से भ्रष्ट हो चुकी है और मरणोन्मुख अवस्था में पहुँची हुई है, लेकिन नाना प्रकार से अपनी असलियत को छिपाना चाहती है। नागार्जुन हास्य का विस्फोट कर उसकी असलियत जाहिर कर देते हैं। उनमें क्षमता है कि वे तानाशाह पर भी, उसकी भयंकरता को पूरी तरह से समझते हुए, हँस सकते हैं। यहाँ हमें उनकी 'वे तुमको गोली मारेंगे' शीर्षक कविता याद आ रही है, जो उनके संग्रह 'प्यासी पथराई आँखें' में संगृहीत है। इसकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं : "बापू की प्रतिभावाली बटनें चमकाते / फौजी वर्दी में तानाशाह पधारेंगे···।" हास्य वस्तुतः उन तमाम चीजों के खिलाफ एक जोरदार अस्त्र है, जो समय द्वारा अप्रासंगिक साबित कर दी गयी हैं, लेकिन जो उसके बाद भी नये यथार्थ को अस्तित्व में आने से रोकने का निरर्थक और हास्यास्पद प्रयास कर रही हैं। इस तरह यह एक ऐसा अस्त्र है, जो सामाजिक संघर्ष में काम आता है। सामाजिक संघर्ष में काम आने वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हास्य का ही सौन्दर्यात्मक मूल्य होता है, उस प्रकार के हास्य का नहीं, जो हममें केवल एक आनन्दानुभूति को संचार करके रह जाता है। यहाँ कहने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि जिस हास्य का सौन्दर्यात्मक मूल्य होता है, वह केवल ध्वंसात्मक ही नहीं, बल्कि रचनात्मक भी होता है। उसमें जो सामाजिक प्रगति में अवरोधक है उसका उपहास किया जाता है, तो जो उसमें सहायक है उसका समर्थन भी किया जाता है।

हास्य की इस चर्चा से यह समझना भूल होगी कि नागार्जुन में हास्य ही हास्य है और व्यंग्य नहीं है। इस चर्चा के आरम्भ में ही कहा जा चुका है कि उनके साधन हास्य और व्यंग्य दोनों हैं। बाद में यह कहा गया है कि उनका हास्य एक सामाजिक अभिप्राय से युक्त है। सामाजिक अभिप्राय से युक्त होने के बाद हास्य सामान्य हास्य नहीं रह जाता, व्यंग्य बन जाता है। एक सोवियत आलोचक ने लिखा है कि "जब हास्य पुरातन के विरुद्ध संघर्ष में अस्त्र बन जाता है, तो वह व्यंग्य का रूप ग्रहण कर लेता है।" व्यंग्य हास्य के बिना नहीं हो सकता, पर वह ऐसा क्रूर और निर्दय हास्य है, जो अपने भीतर तीव्र रोष छिपाए चीजों पर से पर्दा उठाकर उनकी असलियत दिखला देता है। यह आलोचना या विरोध का सर्वोच्च रूप है। साहित्य में उसका इससे अधिक प्रभावशाली रूप देखने में नहीं आया है। व्यंग्य की एक विशेषता यह है कि वह हमेशा रचनाकार के समकालीन जीवन की घटनाओं की ओर निर्दिष्ट होता है। यदि रचनाकार ऐसी चीजों पर आक्रमण शुरू कर दे, जिनका अस्तित्व या तो समकालीन जीवन में नहीं है या है भी तो अनिवार्य तौर पर नहीं, तो उसकी व्यंग्य-सृष्टि सारहीन होगी। नागार्जुन समकालीन जीवन और उसके प्रमुख कारक राजनीति से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। उनकी राजनीतिक कविताएँ और उनमें प्रकट होने वाले व्यंग्य के तत्त्व इसका अनिवार्य प्रतिफलन हैं। प्रगतिशील कवि और भी हैं, लेकिन उन जैसी व्यंग्यात्मक कविताएँ किसी ने नहीं लिखीं। यह समकालीन जीवन और राजनीति के प्रति उनकी अतिशय सजगता का सूचक तो है ही, इस बात का भी सूचक है कि अपने आदर्शों के प्रति जैसी गहरी प्रतिबद्धता उनमें है, वैसी मुक्तिबोध के अलावा किसी दूसरे कवि में नहीं। इस प्रतिबद्धता के कारण ही वे उन व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं के प्रति अत्यन्त असहिष्णु हैं, जो सामाजिक विकास के मार्ग में अवरोध खड़ा करती हैं। वे जहाँ कहीं ऐसी चीज देखते हैं, जो उनके आदर्शों के विरुद्ध होती है, तुरत उसके प्रति प्रतिक्रिया करते हैं और इस तरह उसका ध्वंस करने में कुछ भी उठा नहीं रखते। इस व्यंग्य के प्रभाव के बारे में कुछ कहना नहीं है। किसी भी कवि-सम्मेलन में नागार्जुन के पैने व्यंग्य की मार का प्रभाव देखा जा सकता है। ऐसे प्रभावशाली और खतरनाक अस्त्र का प्रयोग निश्चित रूप से काफी सावधानी और दक्षता की माँग करता है, वर्ना चूक होने पर वह अस्त्र उलटा मार कर सकता है, यानी कवि के अपने आदर्शों के विरुद्ध चला जा सकता है। नागार्जुन ने जहाँ ठीक ढंग से, यानी अपने उद्देश्य और लक्ष्य को ठीक से पहचान कर व्यंग्य-सन्धान किया है, वहाँ वे बेजोड़ हैं, आज यह एक स्वीकृत तथ्य है। जहाँ वे चूके हैं, वहाँ उनका व्यंग्य-सन्धान उनके आदर्शों के विरुद्ध भी गया है। तभी उसका इस्तेमाल समाजवाद-विरोधी और पूँजीवाद-समर्थक पार्टियों और प्रेस ने किया है।●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमीन पक रही है[1]

रामवचन राय

सन् 1980 को 'कविता का वर्ष' कहा गया है। न सिर्फ प्रकाशन की दृष्टि से बल्कि सही रचनाशीलता की वापसी की दृष्टि से भी यह महत्त्वपूर्ण वर्ष है। केदारनाथ सिंह का संग्रह 'जमीन पक रही है' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कविता-संग्रह है। इस संग्रह का इस दृष्टि से भी महत्त्व है कि एक लम्बे अन्तराल के बाद कवि के रूप में केदारदाथ सिंह की वापसी हुई है। लेकिन यह वापसी बिलकुल उसी रूप में नहीं है, जैसा बीस साल पहले वह थे। अगर उसी रूप में उनकी वापसी होती तो न हिन्दी पाठकों के लिए और न कवि के लिए यह सुखद होती। प्रसन्नता की बात है कि रचनात्मक मौन के इस लम्बे अन्तराल को अनुभव की नयी ऊर्जा के साथ केदारनाथ सिंह ने पाटा है।

यह संग्रह इस बात का भी सबूत है कि पिछले दो दशकों में हिन्दी कविता की जो यात्रा हुई है उसके सभी पड़ावों से कवि बखूबी परिचित हैं। दरअसल किसी रचनाकार के जीवन में जो सन्नाटे का काल होता है, वह एक तरह से तैयारी का काल भी होता है। वह नयी चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए अपने को लैस करता है। फ्रेंच कवि पॉल वेलरी ने रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए इस अन्तराल को रचनात्मक ऊर्जा-संचय की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है। इस दरम्यान रचनाकार अनुभव-सम्पदा से अपने को समृद्ध करता है और अभिव्यक्ति के नये क्षितिज का अनुसन्धान करता है। केदारनाथ सिंह के इस संग्रह को देखते हुए यह विश्वास और पुष्ट होता है।

आठवें दशक की कविता वैचारिकता की जो जमीन तैयार करती है, वही केदारनाथ सिंह के इस संग्रह की कविताओं की जमीन है। बल्कि संग्रहके नाम से ही यह ध्वनित होता है कि अब कविता की वह जमीन तैयार हो चुकी है। इसे तैयार करने में कवि की क्या भूमिका रही है, इसकी साक्षी संग्रह की कविताएँ हैं। पर यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि जहाँ सातवें दशक के कवियों ने बड़बोलेपन की हद तक इस बात की घोषणा की कि कविता की जमीन तैयार करने में उनका कितना ज्यादा हाथ रहा है, वहीं प्रस्तुत संग्रह का कवि कहीं मुखर दावा नहीं करता। यह रचनात्मक दायित्व-निर्वाह का शुभ लक्षण है।

प्रस्तुत संग्रह में कुल 45 कविताएँ हैं। इनमें जीवन के साधारण अनुभवों को मार्मिक अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया गया है। अधिकांश कविताओं में कवि बार बार उस जमीन की चर्चा करता है, जो उसकी रचनात्मकता से जुड़ी हुई है और जहाँ खड़ा होकर वह अपने कवि-कर्म की सार्थकता प्रमाणित करता है। रूसी युवा कवि रसूल गोम्जतोव ने लिखा है कि कवि कोई उड़न्तू पंछी नहीं है जिसका कोई घोंसला नहीं होता, बल्कि उसकी जड़ें तो दरख्त की तरह अपनी जमीन में होनी चाहिए। यह कथन सही है; क्योंकि अपनी जमीन से जुड़े बिना कोई रचनाकार अपनी पहचान नहीं बना पाता। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि केदारनाथ सिंह को इस

---

1. जमीन पक रही है, ले० केदारनाथ सिंह, प्र० प्रकाशन संस्थान, 216, श्रीरामनगर, शाहदरा, दिल्ली32-, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 95, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जमीन की सहज पकड़ है और आठवें दशक में भी वह अपनी विशिष्ट पहचान बना पाने में सक्षम हैं।

समीक्ष्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ आज के जीवन की तल्ख सच्चाइयों को प्रकट करती हैं। कवि का अनुभव संसार उन मामूली-सी लगने वाली सच्चाइयों से पूरित है। दैनिक जीवन के दुःख-दर्द और संघर्ष ही उसके अनुभव के केन्द्र में हैं। यहाँ तक कि प्राकृतिक परिवेश का उपयोग भी वह रोटी की हकीकत को उजागर करने के लिए करता है। संग्रह की पहली कविता 'सूर्य' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं : 'वह रोटी में नमक की तरह प्रवेश करता है / ताखे पर रखी हुई रात की रोटी / उसके आने की खुशी में जरा सी उछलती है / और एक भूखे आदमी की नींद से गिर पड़ती है।' (पृ० 9)

दूसरी कविता 'जमीन' संग्रह की सारी कविताओं की जमीन है। या यों कहें कि यह आठवें दशक की कविता की जमीन है, जहाँ सही रचनाशीलता के पाँव जुटे हैं। यह कविता एक प्रकार से समकालीन कविता की सम्पूर्ण रचनात्मकता को उसकी सही चेतना और मुनासिब तैयारियों के साथ उदाहृत करती है। एक रचनात्मक प्रक्रिया की पड़ताल से कविता शुरू होती है—'उसने तय किया कि वह बढ़ई के पास जाएगा / और बातचीत शुरू करेगा / पत्ते गिर रहे हैं और इस समय उसकी रुखानी का / जरा सा हिलना भी निर्णायक हो सकता है।' यह तैयारी इसलिए भी जरूरी है कि हम एक निर्णायक दौर से गुजर रहे हैं। यही सही वक्त है जबकि पहल की जा सकती है। कवि कहता है—'यह पशुओं के बुखार का मौसम है / यानी पूरी ताकत के साथ / जमीन को जमीन कहने का मौसम।' आगे कवि मौसम की पहचान बताने के बाद उसके परिणाम को किंचित् कथात्मक लिबास में चित्रित करता है—'जमीन अपने कपड़े उतार रही थी / हवा में एक अजीब सी ठंड थी / जिसमें जमीन का कत्थईपन मिला हुआ था / जमीन पक रही है उसने कहा / और उसे लगा यह एक ऐसी खबर है / जो खरहों की माद तक पहुँचा देनी चाहिए।' (पृ० 12) दरअसल कवि जमीन की लड़ाई को सही ढंग से साधारण लोगों के पास ले जाना चाहता है। इस सामाजिक दायित्व-निर्वाह में एक छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

कवि अत्यन्त सटीक और दैनिक जीवन में व्यहृत साधारण बिम्बों के द्वारा संघर्ष चेतना की तसवीर खींचता है। कविता की छोटी छोटी पंक्तियों में पीड़ा का एक पूरा परिदृश्य अंकित किया गया है, जैसे—'उसे बेहद हैरानी हुई जब उसने देखा / खरहा की माँद में जमीन नहीं है।' (पृ० 13) इस पीड़ा से उद्वेलित होकर वह सोचता है—'उसने तय किया वह एक दिन / एक चाकू लायेगा और जमीन को बीचो बीच / आलू की तरह चीर देगा।' (पृ० 13) कवि की संवेदना जमीन के भीतर से निकलने वाली गन्ध से जुड़ी है। वह कहता है—'वह जमीन की महक दर्जी तक ले जाएगा / और कहेगा सिलो / वह उस औरत के पास जाएगा / और कहेगा सब्जी अगर नहीं पकती / तो कोई बात नहीं / जमीन पक रही है।' (पृ० 13)

यह पहचान उस संघर्ष चेतना की सही पहचान है, जो एक बुनियादी परिवर्तन के लिए जरूरी है। यहाँ निरावृत सत्य उभर कर सामने आता है। रचनाकार अनुभव के स्तर पर कहीं दुविधाग्रस्त नहीं है। वह इस दुनिया को सही सही देखता और एक नाम देता है। कविता के अन्त में इस स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है—'उसके सामने घोड़े की पीठ की तरह /

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फैली हुई थी जमीन / जमीन सिर्फ जमीन की तरह लग रही थी / सिर्फ जमीन थी / और जमीन का पकना था/जैसे बस्ती में गोस्त पक रहा हो।' (पृ० 13) इस घ्राण बिम्ब के द्वारा कवि तैयार माहौल के प्रति एक लजीज़ लगाव पैदा कर देता है। यह सम्भवतः दर्द के कसैलेपन को काटने का नुस्खा है।

केदारनाथ सिंह की इन कविताओं में अद्भुत पारदर्शिता है, जिसके कारण आसपास की सारी जानी हुई चीजें बिल्कुल साफ सुथरी और विश्वसनीय लगती हैं। यह विश्वसनीयता उनकी कविता की सबसे बड़ी ताकत है। इससे हम आसानी से कविता में व्यक्त अनुभवों से आत्मीय साक्षात्कार कर पाते हैं। इस संग्रह की सारी कविताएँ काफी साफ हैं, पर सपाटबयानी के खतरे से खाली हैं। वे वक्तव्य नहीं हैं; बातचीत हैं। इसलिए इनमें गम्भीर अजनबी मुद्रा नहीं, सहज संवाद है, जिसमें शुरू से अन्त तक परिचय का घरेलू वातावरण मिलता है।

संग्रह में कुछ काफी छोटी कविताएँ भी हैं; जैसे—'नाम' (पृ० 56), 'हाथ' (पृ० 75), 'जाना' (पृ० 76) वगैरह। इनमें विविध भाव खंडों की सटीक अभिव्यक्ति की गयी है। 'नाम' एक सूक्तिकथन की तरह है—'हर नाम एक घोंसला है / जिसमें कोई चिड़िया अंडा नहीं देती'। (पृ० 56) 'हाथ' और 'जाना' दोनों ही प्रेम कविताएँ हैं—एक संयोग की और दूसरी विप्रलम्भ की। पर इनमें प्रेम की मांसलता नहीं, अनुभूति है। अपनी सूक्ष्म संवेदना और अनुभूतिपरकता के कारण ये कविताएँ प्रेम का तटस्थ और गम्भीर रूप प्रकट करती हैं। जैसे—'उसका हाथ / अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा / दुनिया को / हाथ की तरह गर्म और सुन्दर होना चाहिए।' (हाथ : पृ० 75)

'जमीन पक रही है' कविता-संग्रह आठवें दशक की हिन्दी कविता की विशेष पहचान और उसका प्रतिनिधित्व करता है। इस रूप में कविता की वापसी का स्वागत होना चाहिए।●●

आधुनिक प्रेम की असम्भवता के विरुद्ध[1]

केदारनाथ सिंह

'कौन-सा आकाश' सुनीता जैन का दूसरा काव्य-संग्रह है, जिसमें संगृहीत कविता समकालीन हिन्दी-कविता के पूरे परिदृश्य में कुछ ऐसा जोड़ती है, जिस पर अलग से विचार करने की ज़रूरत है। फ्लैप पर कहा गया है—"इन कविताओं में एक खास 'फेमिनिन' गुण है जो सुनीता जैन की अपनी विशेषता है और जो हिन्दी में और कहीं नहीं मिलती।" संग्रह को पढ़ जाने के बाद पाठक के मन पर जो पहला प्रभाव पड़ता है, वह यह कि जिस 'फेमिनिन' गुण की बात फ्लैप पर कही गयी है, उसका मतलब 'फेमिनिन' शब्द के प्रचलित अर्थ से सर्वथा भिन्न है। आज के सन्दर्भ में मोटे तौर पर इस शब्द से दो तरह के अभिप्राय लिये जाते हैं—एक, पश्चिम में प्रचलित 'वीमेन लिब' या नारी मुक्ति के अर्थ में और दूसरा उस अर्थ में जिसे हिन्दी में हम सामान्यतः नारी-सुलभ विशेषता कहते हैं। 'कौन-सा आकाश' की कविताओं में

1. कौन सा आकाश, ले० सुनीता जैन, प्र० पराग प्रकाशन, 3।114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32, प्र० सं० 1979, आकार डिमाई, पृ० सं० 60, सजिल्द, मूल्य 12·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न तो 'वीमेन लिब' का भावात्मक आक्रोश या यौन स्वेच्छाचार है (जैसे भारतीय अँगरेजी की कवयित्री कमलदास की कविताओं में), न ही लज्जा, समर्पण और भावुकता जैसे गुण जो भारतीय साहित्य में लम्बे समय से नारी-सुलभ विशेषता के रूप में जाने जाते रहे हैं। ये कविताएँ ज्यादा ठोस और ज्यादा आधुनिक अर्थ में 'फेमिनिन' हैं, जिसमें नारी-पुरुष सम्बन्ध को अनुभव के यथार्थ धरातल पर रख कर देखने की कोशिश की गयी है। यह ऐसा विशिष्ट अनुभव है,जिसमें विलक्षण नैतिक साहस के साथ साथ टूटते बिखरते हुए प्रेम की दबी हुई गहरी यातना भी है और इन दोनों बातों का एक साथ होना इस पूरे संग्रह को अद्भुत अर्थवत्ता प्रदान करता है।

इन कविताओं की दुनिया छोटी है—एक बेहद निजी और आत्मीय दुनिया और ऐसे युग में जब कविता घोषित रूप से निरन्तर सार्वजनिक होती जा रही हो तो एक रचनाकार की यह छोटी मगर सीधी और सच्ची दुनिया हमें अच्छी लगती है। सुनीता जैन का दृष्टिकोण अपनी कविता के बारे में बेहद साफ़ है, जिसे वे इस संग्रह के पृष्ठ 36 पर इस तरह व्यक्त करती हैं :

मुझे कविता को / शब्द नहीं देने / नहीं कहने गन्ध रस रंगों के / आकार / .... कहना है / हम / तुम / वे / क्या जीते हैं / क्यों जीते हैं ?

'हम-तुम क्यों जीते हैं, क्या जीते हैं'—सुनीता जैन की कविता इसी सच्चाई को, बिना किसी दार्शनिक मुद्रा के, स्त्री-पुरुष के बदलते हुए सम्बन्धों के बीच महसूस करती हैं। हर आरोपित मुद्रा से इनकार करती हुई यह कविता दरअसल उस मुखौटे से इनकार करती है जो आधुनिक कला की एक रूढ़ि बन गयी है। प्रेम इन कविताओं का केन्द्रीय विषय है—पर भावुक या लिजलिजा प्रेम नहीं, बल्कि ठोस मानवीय और धारदार प्रेम जो अपनी पूरी विविधता के साथ यहाँ मौजूद है। यहाँ प्रेम केवल एक ऐन्द्रिय अनुभव ही नहीं—हालाँकि वह उस रूप में भी है और अपनी पूरी शक्ति के साथ है—बल्कि एक आधुनिक मन की ज्यादा गहरी और बुनियादी समस्या के रूप में है :

नहीं प्यार नहीं
कर सकती
फिर प्यार पाने की चाह
क्यों नहीं मरती ?

'कौन-सा आकाश' की ज्यादातर कविताएँ इसी द्वन्द्व से पैदा हुई हैं और मानो तमाम दृश्यों, घटनाओं और संवादों में इसी प्रश्न का उत्तर टटोलती हुई आगे बढ़ती हैं। यह प्रश्नात्मक प्रेम के अनुभव के बिलकुल नये धरातल की ओर संकेत करती है, जहाँ सारी भावुकता छिन्न भिन्न हो जाती है और हर यातना के बाद बचा रह जाता है एक जीता-जागता यथार्थ, जो नयी सम्भावनाओं का अजस्र स्रोत है :

"जानती हूँ सदा कुछ नहीं रहता / दिन जो झेलता है / उसे शाम / रात जो सहती है / उसे सन्नाटा समेटता है / वह भी कि जो नहीं हुए / उनके न होने से तुम हुई / और तुम्हारे जाने से / खुलेंगे द्वार / जो अब तक बन्द थे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रेम के इस बोध में यथार्थ की जो गहरी स्वीकृति है, वही इसे नया बनाती है और अर्थपूर्ण भी। इसमें भावुकता नहीं, बल्कि भावुकता का स्वतः स्फूर्त निषेध है। यातना और उस यातना के बाहर झांकने की कोशिश इन कविताओं में बराबर दिखाई पड़ेगी। इसीलिए 'कौन-सा आकाश' की अधिकतर कविताओं में प्रेम की त्रासदी का जो स्वर बार बार सुनाई पड़ता है, वह अन्त तक जाते जाते 'प्रसाद' के 'आँसू' की तरह एक विलक्षण मानवीय आश्वस्ति में बदल जाता है :

"टीसते जीवन में / हर सम्भव सावधानी पर्यन्त / तुम्हारा प्रवेश / मंगल / मंगल / मंगल हो।"

सुनीता जैन की कविता कई बार छोटे छोटे अनुभवों से गुजरते हुए अचानक किसी अप्रत्याशित दृश्य के सामने रुक जाती है और फिर मुड़ कर मानो अपने से ही सवाल करने लगती है। 'हालाकि अब कोई' शीर्षक कविता पाठक से (और अपने रचयिता से भी) एक ऐसा ही सीधा मगर तिलमिला देने वाला सवाल करती है :

फिर भी हर शाम
जब पास के चीकर पर
कौओं का जोड़ा उतरता है
तो मन में
हैरत-सा कुछ हिरता है
सिर्फ इन्सान ही क्या अपना
घर गर्क करता है ?

यह महत्त्वपूर्ण है कि कविता में 'कौओं का जोड़ा' है, सिर्फ 'कौआ' नहीं जो लोक-कविता की एक सुपरिचित रूढ़ि या 'अभिप्राय' है। इस तरह कौए का यह बिम्ब जहाँ प्रेम-कविता की रूमानियत को हल्का-सा झटका देता है, वहाँ अपनी ठोस प्राकृतिक उपस्थिति द्वारा 'कन्ट्रास्ट' का विरोध भी पैदा करता है, जो कविता के प्रभाव को गहनतर बनाता है।

प्रस्तुत संग्रह की एक विशिष्टता इस बात में है कि इसकी सारी कविताएँ मिल कर एक समग्र प्रभाव उत्पन्न करती हैं और, इस तरह, अलग अलग शीर्षकों के बावजूद दरअसल पूरी पुस्तक में एक ही लम्बी कविता है। अलग अलग कविताएँ वस्तुतः उस लम्बी कविता के छोटे-छोटे टुकड़े हैं—एक ही संगीत-रचना के अलग अलग नोट्स की तरह। आधुनिक समाज में प्रेम की असम्भवता के विरुद्ध ये कविताएँ विलक्षण नैतिक साहस और जिम्मेवारी के साथ उसकी अपरिहार्यता की घोषणा करती हैं—हालांकि प्रत्यक्षतः 'घोषणा' जैसा उनमें कहीं कुछ नहीं है। ऐन्द्रिय आवेग से लेकर मानवीय यातना तक प्रेम यहाँ अपने विविध रूपों से मौजूद है। इसलिए हो सकता है, कुछ कविताओं में लगे कि रूमानियत का रंग ज़रा गाढ़ा है। कुछ में ऐसा भी लग सकता है कि एक अच्छी कविता का कच्चा माल पूरी तरह सीझने से पहले ही आँच पर से उतार लिया गया है। पर जैसा मैंने पहले कहा, ये सारी कविताएँ एक ही मूल कविता के विविध 'शेड्स' हैं और इस तरह उस पूरी भावमाला के भीतर प्रत्येक टुकड़े की अपनी सापेक्ष स्थिति है। मतलब यह कि सुनीता जैन ने अपने इस संग्रह में छोटी कविता का एक अलग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शल्प और साँचा विकसित किया है। हिन्दी में छोटी कविताओं की लम्बी परम्परा है और समकालीन कविता का अच्छा खासा हिस्सा ऐसा है, जिसे छोटी कविता के वृत्त में ही रखा जा सकता है। पिछले दिनों जापानी 'हाइकू' के पैटर्न पर भी काफी बड़ी मात्रा में छोटी कविताएँ हिन्दी में लिखी गयी हैं। पर सुनीता की छोटी कविताएँ 'हाइकू' से इस अर्थ में भिन्न हैं कि उनमें न तो कोई दार्शनिक संकेत या सामान्यीकरण है, न ही प्रत्यक्ष अनुभव को अतिक्रान्त कर जाने वाली सूक्ष्म प्रतीकात्मकता। ये छोटी कविताएँ अपनी सारी मूर्तिमत्ता के साथ बच्चे की उस गेंद की तरह हैं, जो हर आघात के बाद कुछ दूर तक हवा में जाती है और फिर अपनी जमीन पर लौट आती है। 'कौन-सा आकाश' के रचयिता के निकट यह जमीन उसकी अपनी संवेदना है—एक सच्ची, खुली निष्कवच संवेदना।

एक रचनाकार के रूप में सुनीता द्विभाषी हैं—वे हिन्दी में भी लिखती हैं और अंगरेजी में भी। यद्यपि इन दोनों बातों का आपस में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, पर अभिव्यक्ति के इस दोहरे संघर्ष का प्रभाव 'कौन-सा आकाश' की भाषा पर जहाँ तहाँ देखा जा सकता है। इसीके चलते जहाँ एक ओर 'हर सम्भव सावधानी-पर्यन्त' जैसे कई अपेक्षाकृत अल्पपरिचित मुहावरे मिल सकते हैं, वहाँ दूसरी ओर कुछ अत्यन्त परिचित शब्द और मुहावरे भी कविताओं में इस तरह लाये गये हैं, जैसे वे पहली बार उच्चरित हो रहे हों। सुनीता की कविता के मिजाज की तरह उनकी भाषा का परिवेश भी बहुत कुछ घरेलू है। यह एक अत्यन्त धीमी लय वाली भाषा है—बहुत कुछ आत्मसंलाप जैसी। लय का यह धीमापन ही उसकी विश्वसनीयता का सबसे बड़ा आधार है। यह ऐसी भाषा है, जिसमें किसी तरह के दावे नहीं हैं—यहाँ तक कि शिल्प या शैली सम्बन्धी दावे भी नहीं और शायद यही बात अपने सर्वोत्तम रूप में इस भाषा को सबसे अधिक सम्प्रेष्य बनाती है। वैसे सम्प्रेष्यता का सीधा सम्बन्ध सिर्फ भाषा से कभी नहीं होता। काव्य प्रक्रिया में उसका सम्बन्ध संवेदना से पहले होता है, और किसी वस्तु से बाद में। वस्तुत: समकालीन कविता के सारे शोर-शराबे के बीच 'कौन-सा आकाश' का प्रकाशन एक सुखद और खामोश घटना की तरह है—खास तौर से इसलिए कि उसकी कविताओं में आधुनिक मन की उस बेहद सच्ची और निजी संवेदना को पूरी ईमानदारी के साथ बचाये रखने की कोशिश की गयी है, जो आज के जीवन से क्रमश: लुप्त होती जा रही है।

आदिम एकान्त[1]

रामवचन राय

'आदिम एकान्त' नयी कविता के यशस्वी कवि डॉ० जगदीश गुप्त के एक सौ चार गीतों का संग्रह है, जिन्हें पुस्तक के अन्तर्गत सात अनुभागों में रखा गया है। इनमें कुछ गीत नयी कविता-आन्दोलन के पहले के हैं और कुछ बाद के। नयी कविता लिखने के पूर्व जगदीश गुप्त व्रजभाषा में भी कविताएँ लिखते थे और गीत-रचना भी करते थे। उनकी गीति चेतना नयी

1. आदिम एकान्त, ले० जगदीश गुप्त, प्र० राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 144, पेपरबैक, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कविता के दौर में भी स्पष्ट देखी जा सकती है। 'नाव के पाँव' और 'हिमविद्ध' में इसके अनेक उदाहरण हैं। किन्तु गीत लिखते जाने के बजाय नयी कविता लिखने की जरूरत उन्हें महसूस हुई; क्योंकि 'गीतात्मक संवेदना की एकाकी सीमित परिधि में नयी कविता का विशाल अनुभूति-क्षेत्र समा नहीं सकता था।' इस युगीन अनुभव को विस्तार देने के लिए उन्हें नयी कविता का स्वरूप ही मौजू जान पड़ा और वे गीत से कविता में आये। पर गीत से उनका पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ। जीवन के नितान्त एकाकी क्षणों के स्नेह-विश्वास, हर्ष-उल्लास, आशा-निराशा, करुणा और उदासी को वे जब तब गीतों के रूप में प्रकट करते रहे हैं। 'आदिम एकान्त' उसी आत्ममन्थन की लयात्मक अभिव्यक्ति है।

नयी कविता के दौर में उसके समानान्तर नवगीत का आन्दोलन भी चल रहा था। इसके समर्थक तरह तरह की घोषणाएँ कर रहे थे और नवगीत को ही समकालीन चेतना का मुख्य स्वर मान रहे थे। नयी कविता और नवगीत के बीच एक अजीब मोर्चाबन्दी की स्थिति आ गयी थी। यह गौर करने की बात है कि दोनों काव्यरूपों से जुड़े होकर भी जगदीश गुप्त ने अनुभूति विस्तार के लिए कविता को ही माध्यम बनाया। नवगीत के लिए अलग मोर्चा-बन्दी की आवश्यकता उन्हें महसूस नहीं हुई। उन्होंने स्वीकार किया है—"मैं नयी कविता के विरुद्ध 'नवगीत' आदि की मोर्चेबन्दी को अनावश्यक मानता रहा हूँ। दोनों का साहचर्य ही श्रेयस्कर है; क्योंकि वे परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। नयी कविता अधुनातन भाव-बोध और युगीन वैचारिक संघर्ष से अनुप्रेरित होती है और गीत अपने मूल रूप में कहीं न कहीं आदिम संस्कारों को जगाने का यत्न करता है।" (आदिम एकान्त : आत्म-पक्ष, पृ० 102)

पर जगदीश गुप्त के इन गीतों की विशेषता है कि इनमें 'अधुनातन भावबोध और युगीन वैचारिक संघर्ष' भी व्यक्त हुआ है। यह उनके गीतकार को उनके कवि की देन है। संग्रह का पहला ही गीत इसका उदाहरण है—

भटकनों में अर्थ होता है।
टूटना कब व्यर्थ होता है।
जिन्दगी कच्चे घड़े-सी है।
आँच देकर हर विषय अनुभव पकाता है।
सतह से सम्पर्क रख कर भी।
व्यक्ति मन गहराइयों में डूब जाता है।

यह गीत आज के बेसहारे जीवन में भटकते हुए आदमी की नियति का आस्थावादी चित्र प्रस्तुत करता है। यह आस्थामूलकता नयी कविता के नैराश्यपूर्ण युग में जगदीश गुप्त की अपनी विशेष पहचान है। 'अर्थ किसमें है कहाँ खोजूँ / कुछ बताओ तो जहाँ खोजूँ।' (पृ० 20) उसी आस्था की खोज है। यही खोज कवि को अपने परिवेश के सार्थक सन्दर्भों से जोड़ती है। फिर धीरे धीरे प्रकृति का एक एक दृश्य खंड उस अर्थ को खोलने लगता है—'वर्षा की बूँदों से शब्द शब्द धुलता है / बूँदों की वर्षा से नया अर्थ खुलता है।' (पृ० 26)

'आदिम एकान्त' के प्रेम गीतों में प्राकृतिक दृश्य बिम्बों का ऐसा सटीक संयोजन हुआ कि देह की दूरियाँ भी संवेदनात्मक संस्पर्श भर देती हैं—'पीपल का हर पात चमकता जैसे जल में सीप / देह-देह से दूर, प्रान के फिर भी प्रान समीप।' (पृ० 56) कवि यह निकटता इसीलिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुभव करता है, क्योंकि—'इस समीरन में मिली होगी तुम्हारी साँस भी।' (पृ० 60) प्रस्तुत संगह के अनुभाग चार-पाँच में प्रायः प्रेम गीतों को ही संजोया गया है। ऐसा लगता है, कवि के हृदय में प्रेम की एक समर्पित आस्था है। वही कहीं 'नयनों की भाषा' से, कहीं 'अलस-पलकों' से और कहीं 'शिथिल अलकों' से प्रकट होती है।

किन्तु 'भटकनों में अर्थ' की तलाश से जो यात्रा शुरू होती है, वह 'गहन एकान्त' में जाकर रुकती है, वही सृजन का एकान्त है जहाँ कवि भटकन और संघर्ष को स्वर देता है। संग्रह का अन्तिम गीत—'मुझे फिर मेरा गहन एकान्त दो' इस यात्रा का पड़ाव है। कवि कहता है—'दो वही आदिम, अचल एकान्त / असह कोलाहल कलह को वेध कर भी / छाँह जिसकी तिक्त मन को परस जाती है / जहाँ भी अस्तित्व झूठा जान पड़ता है / वहीं उसकी याद आती है।' (पृ० 144) इस प्रकार कवि जगदीश गुप्त की गीत यात्रा भटकन से आरम्भ होकर 'आदिम एकान्त' में पहुँचती है, जो इन गीतों का उद्‌गम है।

कवि के रेखांकनो से युक्त यह गीत संग्रह उसके रचना-मानस के कोमल स्नायु तन्तुओं को समझने में सहायक होता है; इस दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है।●●

जड़ों की आखिरी पकड़ तक[1]

रामवचन राय

प्रस्तुत पुस्तक युवा कवि रवीन्द्र भारती की 45 कविताओं का संग्रह है। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इसके द्वारा कवि अपनी पहचान बनाने में सक्षम है। हिन्दी कविता में सन् 60 के बाद मोहभंग की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी वह सातवें दशक तक पूरी हो चुकी थी और उसने कवि को सही सर्जनात्मकता की ओर प्रेरित किया था। इसलिए अधिकांश कवियों ने मोहभंग से उत्पन्न आक्रोश को रचनात्मक संयम से दबा कर अपनी उर्जा का इस्तेमाल एक नयी जमीन की पड़ताल करने में किया। यहाँ बाहरी शोरशराबे और हलचल को भीतर, चेतना के स्तर पर उतार कर नये जीवन मूल्यों को उभारने की चिन्ता अधिक है। कवि की पीड़ा शंख बनने की बजाय उसकी धड़कनों में अधिक मुखरित हुई है। यह युवा कविता के चरित्र की खास विशेषता रही है। रवीन्द्र भारती इसी खेवे के कवि हैं जिनकी कविता ऊपर से तोड़ती फोड़ती नहीं, भीतर मार करती है।

हिन्दी के एक चर्चित युवा कवि लीलाधर जगूड़ी ने युवा कविता के इस खास चरित्र को रेखांकित करते हुए कहा है कि सन् 75-76 में कविता को बड़ा फायदा हुआ। एक झंनाटे में कविता की भाषा ने अपनी उग्रता को अन्दर कर लिया। जैसे लड़ाई में सिपाही खुद को 'कैमॉफ्लेज' कर लेते हैं, भूमिगत मोर्चों पर घास उगा दी जाती है, बारूद, बम, बन्दूक और मशीनगनों को हरी हरी बेलों से ढँक दिया जाता है।' वैसे ही कवियों ने भी उभरे हुए सारे सन्दर्भों को शुरू किया। सोचा जाने लगा कि न इरादा देखना चाहिए न हथियार, सिर्फ मार होनी चाहिए। कविता में सहसा फूल, पत्ती, तितली, पेड़, चिड़िया और बच्चे नयी नयी तरह से

1. जड़ों की आखिरी पकड़ तक, ले० रवीन्द्र भारती, प्र० परिचय प्रकाशन, हापुड़-1, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 18·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उग आये।" यह कथन रवीन्द्र भारती की कविताओं पर भी पूरी तरह लागू होता है, जैसे : 'कमीज छाती तक चढ़ाये / गाँव के लड़के जलकुम्भी का एक थान काट कर / आहिस्ते आहिस्ते ठेलते हुए /लाते हैं किनारे /फिर जिस झटके से जलकुम्भी की जड़ों में मछलियाँ खोजते हैं /कौवों और बगुलों को हाँकते हुए।' (बुद्धा नदी, पृ० 12) अथवा 'दूसरे सिरे से नंगे पेड़ों की डंठलों में— मुँह खोलते पत्ते /कतार की कतार छा जाते हैं।' (पेड़, पृ० 16) अथवा 'पिकनिक की हरियाली में / हवाएँ जब केश की तरह पत्तियों को उलटती हैं इधर उधर / फटे हुए पन्ने की तरह / पेड़ पर अटका हुआ दिखता है चाँद।' (स्मृति-2, पृ० 27)

समीक्ष्य संग्रह की कविताओं का स्वर युवा कविता का असली स्वर है जिसमें आज के संघर्षशील मनुष्य की पीड़ा, परेशानी और चिन्ता समाहित है। इससे कवि की जागरूकता भी जाहिर होती है कि वह अपने समय और समाज से किस कदर जुड़ा हुआ है। आज कविता सिर्फ कला यात्रा नहीं है। वह सामाजिक दायित्वों को सजगता के साथ सम्पादित करने की विधा है। प्रस्तुत संग्रह का कवि अपने इस दायित्व से भलीभाँति परिचित है। वह कहता है—'उन शब्दों के अर्थ में जाना चाहता हूँ / जिन्होंने हमारे बच्चों को / उन शब्दों के अर्थ में जाना चाहता हूँ / जिन्होंने हमारे लड़कों को / मारा है जुलूस की शक्ल में / भिन्न भिन्न तरीकों से एक एक कर।' (बुद्धा नदी, पृ० 13)

संग्रह में कुछ समसामयिक राजनीति पर चोट करने वाली कविताएँ भी हैं जो आज की व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करती हैं। 'हिन्दुस्तान 1975', 'बादशाह जब जब शहर में आता है', 'मुर्दागाड़ी', 'रानी के सिरहाने पैंताने' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं जिनमें आम आदमी की नियति और व्यवस्था के अन्तर्विरोध का सटीक चित्र उपस्थित किया गया है। कवि व्यवस्था के चरित्र पर व्यंग करते हुए, आम आदमी की पीड़ा का परिचय इन शब्दों में देता है— 'सड़क के कोठे पर /गणतन्त्र बाबू का चल रहा है प्यार /सड़क के कोठे पर/बड़े बड़े पंजे ले रहे हैं डकार / सड़क के कोठे से निकलने को / सनेही बरसों से / खोज रहा है द्वार / कोठे की सीढ़ियों पर /फूल की तरह सूँघते पूरे शहर को / पीते हुए घटनाओं के जहर को /आदमी की एक जमात पूरी रात चूनाकली करती रही / बाँसों पर बल्लियाँ कसती रही।' (पृ० 30)

रवीन्द्र भारती की कविता आसपास बिखरी जिन्दगियों की कविता है। बल्कि इन साधारण जिन्दगियों का उसे कोलाज कह सकते हैं। कवि की संवेदनशीलता इन घटनाओं और दुर्घटनाओं को एक रचनात्मक आयाम देती है। 'पारसबीघा' या 'गाँधी के देश का डकैत डोम' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं जो दम तोड़ती हुई इन्सानियत की ढूह से निकली हैं और कवि की जाग्रत संवेदना का अभिन्न अंग बन गयी हैं। हम कह सकते हैं कि कवि के पास अखबार-नवीस की नजर और सर्जक साहित्यकार की संवेदना दोनों है।

इस संग्रह की कविताओं को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि कवि ढेर सारी घटनाओं के बीच में खड़ा है। वह इन अनचाही घटनाओं की भीड़ में एक साथ बहुत कुछ कहने की जल्दीबाजी में है। इसलिए इनमें अनुभव अत्यन्त आवेग के साथ व्यक्त हुआ है। दूसरी बात कि हर एक घटना के मूल में वह कुछ सामाजिक-राजनीतिक साजिशों का संकेत पाता है। यही वजह है कि अभिव्यक्ति के स्तर पर एक खास तरह की चौकसी उसमें दिखायी पड़ती है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे—'यह अफसरनुमा आदमी / अन्दर से नहीं रटकर बोल रहा है /बोलते बोलते उस दिन शोर लाल पगड़ी सा / मेरी आँखों में तिर आया था' (रोटी, पृ० 15)

इस संग्रह की प्रायः हर कविता कथात्मक मुद्रा के साथ शुरू होती है। ऐसा शायद कवि कविता की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए करता है। वैसे कई कविताओं में उसने कथात्मक तत्त्व का निर्वाह भी किया है जैसे 'सूर्य की ज्योति', (पृ० 32) और 'गाँधी के देश का ठकैता डोम' में। (पृ० 77) इनके अलावा अन्यत्र उसने कथात्मक संस्पर्श का सहारा लिया है। ऐसी कविताएँ त्वरा के साथ शुरू होती हैं और पाठक की उँगली पकड़ कर उसे ऐसे अनुभव लोक में ले जाती हैं, जहाँ दैनिक जीवन की जानी सुनी चीजों को नये आलोक में देखने और पहचान कायम करने की दृष्टि मिलती है। वैसे कविताओं में कथाविन्यास रवीन्द्र भारती का उद्देश्य नहीं है। वह उसे एक उपकरण के रूप में इस्तमाल करते हैं जैसे—'सात मुँह अट्ठाईस पैरों वाला घोड़ा /बेहद हँसमुख और पानीदार / उत्सव में दौड़ता है सरपट।' (अश्वमेघ, पृ० 22) अथवा 'भोंपू लिये चूहामार बेचते / पुड़िया बनाते, / बीड़ी फूँकते / अब्दुल का बेटा सत्तार /मिला था पिछली बार।' (पिछली बार, पृ० 41)

यह बात विशेष ध्यान देने की है कि युवा कविता का जो स्वर उभर कर आया है, उसमें रवीन्द्र भारती निचाट ग्रामीण संवेदना के कवि हैं। उनके रचना मानस का निर्माण ग्रामीण जीवन के सहज परिवेश से हुआ है। उस परिवेश की धूल, धूप, चिड़िया, नदी आदि से कवि का रागात्मक लगाव है। वह कविता में पूरी तन्मयता के साथ स्वयं इस परिवेश को भोगता है। इसलिए उसकी कविताओं में ग्रामीण परिदृश्य पड़ाऊँ नहीं लगते बल्कि अनुभूति की जड़ से निकले हुए हैं। कहना चाहिए कि इन जड़ों की आखिरी पकड़ तक कवि की पहुँच है। गाँव की धड़कन, उसका रंग रूप, इनकी कविताओं में पूरी ताजगी के साथ चित्रित है। कवि 'माँ का किस्सा' जब बयान करता है तो उसकी सम्पूर्ण चेतना झंकृत हो उठती है। "माँ गाँव से आयी है / खेत भर किस्सों के साथ / माँ किस्से में भींग रही है / घर से वहाँ तक / जहाँ इमली के खोहों में / सुआ के बच्चे पंख खोल रहे हैं।" ('माँ का किस्सा', पृ० 73)

युवा कविता ने अपने लिए जिस नयी भाषा की इजाद की है वह भाषा रवीन्द्र भारती के पास है, पर अपनी पीढ़ी के दूसरे कवियों से उनकी भिन्नता यह है कि उनकी भाषा बिम्ब-बहुल भाषा है। नयी कविता के दौर में बिम्ब रचना की अधिक प्रधानता थी। धीरे धीरे बिम्ब विघटन की प्रक्रिया शुरू हुई। युवा कविता तक आते ऐसा महसूस किया जाने लगा कि बिम्ब विधान बहुत पीछे छूट गया है और कविता का वह अनिवार्य हिस्सा नहीं है। किन्तु रवीन्द्र भारती की इन कविताओं के माध्यम से लगता है कि युवा कविता में बिम्ब की वापसी हो रही है। कवि ने प्रायः सभी कविताओं में बिम्बों का सटीक प्रयोग किया है। खास तौर से दृश्य और श्रव्य बिम्बों के अनेक उदाहरण इस संग्रह की कविताओं में भरे पड़े हैं: जैसे 'बोलते बोलते उस दिन शोर लाल पगड़ी-सा / मेरी आँखों में तिर आया था।' (रोटी, पृ० 15) अथवा 'बन्द दरवाजे का सीना पीट कर रंग लेती है हाथ सुबह'। (हिन्दुस्तान 1975, पृ० 17) अथवा 'बीच खेत में कौआ पकड़े / कैसे पेड़ हो गये हैं पाँव।' (पुतला, पृ० 55)

कुल मिला कर इस संग्रह की कविताएँ कवि की उस तड़प और छटपटाहट को व्यक्त करती हैं जो एक ईमानदार रचनाकार के रूप में वह सामाजिक जड़ता को तोड़ने के क्रम में अनुभव करता है। वह किशोर साहसिकता से प्रेरित होकर इस लड़ाई में शामिल नहीं है; बल्कि अपनी नियति से और अस्मिता से पूरी तरह वाकिफ होकर जोखिम उठाने की निष्ठा रखता है। इसलिए रवीन्द्र आज की खतरनाक जीवन स्थितियों के जुझारू युवा कवि हैं।●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कई अन्तराल[1]

भृगुनन्दन त्रिपाठी

'पुनर्वास का दंड' के बाद विनय की कविता पुस्तक है—'कई अन्तराल'। प्रस्तुत संग्रह के शीर्षक 'कई अन्तराल' का औचित्य रश्मी तौर पर इसलिए तो है ही कि संग्रह में इसी शीर्षक से एक कविता है; इसलिए भी है कि कवि अपनी काव्य यात्रा में दो दो वर्षों के ऐसे ही कई अन्तराल पार करता आया है। पन्द्रह वर्षों में विनय की यह सातवीं काव्यकृति है और इस विश्वास के पर्याप्त कारण हैं कि प्रस्तुत कृति विनय की पूरी काव्ययात्रा को गुणदोष के साथ रेखांकित करती है और उसके तमाम अन्तरालों की समवेत अभिव्यक्ति करती है।

पहली नजर में ही हिन्दी कविता के पाठक को अनुद्दीपक और बासी लग जाने वाली अपनी कविता की, अपेक्षाकृत बड़ी पाठकीय स्वीकृति के लिए, विनय लम्बी भूमिका रखते हैं—'विचार भूमि'। 'विचार भूमि' इसलिए कि प्रासंगिकता के लिए कविता में सामयिक परिवर्तन का सवाल सीधे 'रचना भूमि' से जुड़ा है, जहाँ अपनी पिछड़ी मानसिक संस्कृति एवं कविता के सांस्कारिक पूर्वग्रहों की वजह से कवि रचनात्मक रूप में विवश है, निरुपाय है। इस निरुपाय विवशता को छिपाने, रंजित करने और जरूरत पड़ने पर उचित करार देने के लिए भी, 'विचार भूमि' की जरूरत पड़ती है।

अपने काव्यसृजन में स्पष्ट वैचारिकता के अभाव को मनोवैज्ञानिक पेचीदगी की चीज बनाते हुए, विचार की भूमि पर विनय कई अन्तर्विरोधों की सृष्टि कर लेते हैं; आरम्भ में ही भाववादी भाषा में कविता के प्रश्नों का सस्ता 'दार्शनिकीकरण' करते हुए कवि कई अतिसरलीकृत निष्कर्ष देता है। आज भी विनय 'साधन-साध्य, स्व-पर, अन्तर्मुख-वहिर्मुख, व्यष्टि-समष्टि' जैसे शब्दों के सहारे काव्य को और उसकी रचना प्रक्रिया को परिभाषित करते दीखते हैं। विनय ने अप्रच्छन्न रूप से समकालीन युवा कविता पर 'अनुभूति की एक तार गहराई' और 'संवेद्य प्रभावशीलता' की उपेक्षा करने और 'रागमूलकता' से कट जाने का इल्जाम लगाया है। अनुभूति, राग, संवेद्यता जैसे शब्दों का विनय के यहाँ आज भी नगेन्द्रीय या अधिक से अधिक जगदीशगुप्तीय अर्थ-सन्दर्भ है। युवा कविता से विपक्षीय बहस बिना उसके रू-ब-रू हुए, बिना उसकी आँखों में आँखें डाले, सम्भव नहीं है।

संग्रह की कविताओं में भूमिका के अनुरूप काव्यनिष्ठा की दृष्टि से विनय 'बहिर्मुखीन' होने के बदले 'अन्तर्मुखीन' हैं। दूसरे शब्दों में 'सामाजिक संघर्ष की भूमिका में विद्रोही' होने के बदले 'आत्मपरिचय की अनुभूत्यात्मक गरिमा में प्रेमी' होकर उससे बड़े होने का न केवल सन्तोष करते हैं, बल्कि दम्भ भी भरते हैं। गलत ढंग से उक्त विद्रोह के प्रतिपक्षी के रूप में रखे जाने के बावजूद, जाहिर है, प्रेम एक महत् मानवीय मूल्य है और 'विद्रोह बनाम प्रेम' जैसे जहालत भरे खयाली विवाद में पड़ने से बेहतर यह याद करना होगा कि विद्रोह के मूल में भी प्रेम जीवन मूल्य के रूप में मौजूद होता है। जो भी हो, प्रेम के लिए कवि की अन्तर्मुखीनता का स्वरूप

---

1. कई अन्तराल, ले० विनय, प्र० भारती भाषा प्रकाशन, 581/6 बी, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 16·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्या हैं ? फिर उसकी व्यापक सार्थकता के सन्दर्भ क्या हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर में ही विनय की कविताओं की समीक्षा सम्भव है।

इस संग्रह के काव्य संसार में मानवीय उपस्थिति के नाम पर केवल दो ही पात्र हैं: एक 'आत्मानुभूति' की इन कविताओं का नायक—तो वास्तव में कवि स्वयं हैं; और दूसरे 'तुम'—एक अनाम स्त्रीलिंगीय भाव सत्ता—जो कवि की प्रिया है। इन्हीं दो पात्रों के बीच विनय की वस्तुक्षीण भाव कविता जन्म लेती है। विनय की कविता में ऐसी वस्तु के नाम पर धार्मिक पूजा-पाठ तथा उसके उपक्रमों के कलात्मक हवाले आते हैं, जो अक्सर एक थोथी पवित्रता के दम्भ से युक्त समर्पण की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक, कभी बिम्ब के रूप में नियोजित किये जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि आज कोई कवि अपनी कविता में भक्तिवाद चलाने का हास्यास्पद दुस्साहस भले कर ले, इस तरह के धार्मिक टंट घंट वाले वस्तुगत परिवेश में आज के मनुष्य को नहीं समझा समझाया जा सकता।

'तुम' यानी नायिका का चरित्र मध्यवर्गीय घरेलू बीवी का है, जो निर्जला इकादशी करती है, तुलसी को जल देती है और पति को वियोग में डालकर पीड़ित करती है। उस पीड़ा से, बतौर साक्ष्य, कविता जन्म लेती है। इन कविताओं में कवि का उत्तर-छायावादी मन 'नयी कविता' की भाषा में, कभी इसके विलोम भी, एकरस होते एक ही सामान्य अनुभव को बार बार रचने की कोशिश करता है। यह आसक्त अनुभव है, वास्तव में नारी की देह रस का, जिसे एक कुंठित सफेदपोश मन दार्शनिक विलास का रूप देने के लिए आतुर रहता है। इस एकरस अनुभव को कविता में बदलने के लिए भाववादी भाषा में डबडबाती आर्द्रता लाने की कोशिश की जाती है।

कवि प्रिया की सत्ता इकहरी है, जटिल नहीं। वह संघर्ष करती व झेलती पत्नी नहीं है। वह पत्नी भी उस तरह नहीं, बल्कि एक नामहीन भावात्मक शाश्वत नारी इकाई है, मानो 'पुरुष' में मुकाबले 'प्रकृति' हो। कवि यथार्थ दाम्पत्य के जटिल अनुभवों की बातें नहीं करता। वह नायिका को 'प्रकृति पुरुष' के दार्शनिक प्रत्ययों के अनुरूप ही लेता है। इस तरह सोते की तरह बलबलाकर फूट पड़ने वाली भाववादी तत्सम भाषा में अपनी अनुभूति को बखानता है। कविता में रोमान भी नहीं, सपाट विरस मध्यवर्गीय लिजलिजापन है और है अनुभव की कूपमंडूकता●●

चट्टानों का जलगीत[1]

भारत भारद्वाज

अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणीयता एवं काव्य रचना की ऊर्जा की दृष्टि से वेणु गोपाल धूमिल के बाद सातवें दशक की हिन्दी कविता-पीढ़ी के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। वेणु गोपाल की काव्य-यात्रा साठोत्तरी पीढ़ी के तुरत बाद ही शुरू होती है। उनकी शुरू की कविताएँ प्यार, प्रेम, क्षण की रचना प्रक्रिया आदि से सम्बद्ध हैं।

---

1. चट्टानों का जलगीत, ले० वेणु गोपाल, प्र० शीर्षक प्रकाशन, गढ़ रोड, हापुड़, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 112, सजिल्द, मूल्य 25·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी कविता में वेणु गोपाल की सही पहचान 'अंटार्कटिका', जून '70 के अंक में प्रकाशित उनकी कविता 'सभी के लिए' से हुई थी। यद्यपि इस कविता में वेणु गोपाल की क्रान्तिकारिता का, जो निम्न पूँजीपति वर्ग की उपज है, विस्फोट हुआ था लेकिन उस दौर में हिन्दी कविता जिस क्रान्तिकारी लफ्फाजों से गुजर रही थी इसमें यह बिल्कुल स्वाभाविक था। इस कविता में वेणु गोपाल ने इस जड़ पूँजीवादी व्यवस्था को एक झटके में, मात्र एक 'तीली' से, राख कर देना चाहा था। न केवल पूँजीवादी व्यवस्था का यह गलत मूल्यांकन था बल्कि कहीं वस्तुस्थिति का यह आत्मपरक मूल्यांकन भी था अतिक्रान्तिकारिता के कारण। लेकिन इसके बावजूद इस कविता के तेवर को देखते हुए इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मात्र इस कविता ने वेणु गोपाल को समकालीन कविता के हिरावल दस्ते में शुमार किया। वेणु गोपाल की कविता से मेरा पहला परिचय—मिजोरम प्रवास के दौरान—इसी कविता के माध्यम से हुआ था। इस बीच इन वर्षों में न केवल क्रान्तिकारी कवि को मैंने एक छोर से दूसरे छोर पर पाया है बल्कि इस दौरान इनकी काव्यवस्तु में विविधता के अतिरिक्त वयस्कता भी आयी है। यह चौंकाने वाली बात है कि कविता की शक्ति में उनका विश्वास न केवल टूटा है बल्कि कविता की सार्थकता की नयी तलाश भी उनकी कविता अब करती दिखती है। स्पष्टतः कविता की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगाने के साथ ही कविता में जीवन के सारे आयाम को समेट लेने की उनकी बेचैनी भी क्रमशः उजागर हो रही है।

वेणु का पहला कविता-संग्रह 'वे हाथ होते हैं' 1976 में प्रकाशित हुआ था, यद्यपि समीक्षित पुस्तक के ब्लर्ब में यह गलत सूचना दी गयी है कि 1972 ई० में इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इस प्रथम कविता संग्रह में उनकी 1964-1972 तक की कविताएँ थीं। इस कविता संग्रह की नोटिस हिन्दी के आलोचकों ने बिल्कुल नहीं ली। सम्भवतः समकालीन कविता-संग्रहों में यह पहली पुस्तक थी जिसकी एक भी समीक्षा मेरी नजर में आयी। सम्भव है वेणु गोपाल के उग्र वामपन्थी इमेज के कारण या आपात्काल के दौरान प्रकाशित इस संग्रह की नोटिस न ली गयी हो लेकिन इससे वेणु गोपाल का कवि ओझल नहीं हो जाता। उनको अपनी कविताओं के कारण जेल से लेकर कटघरे तक से गुजरना पड़ा है। उनकी कविताओं के बारे में चार्जशीट में कहा गया था कि 'तीली' शब्द बहुत खतरनाक है और इनकी कविताएँ पढ़नेवालों के दिमाग पर असर डालती हैं, लेकिन वेणु गोपाल ने शासन के हस्तक्षेप के बावजूद यह महसूस किया कि 'कविता के लिए सबसे बड़ा संकट अगर कोई है या बन सकता है तो वह कवि है।' (वही पृ० 37) इसका मतलब यह हुआ कि कविता को लेकर कवि का रिश्ता संघर्ष से ही प्रमुख है और बाकी बातें गौण हैं।

'चट्टानों का जलगीत' में संकलित कविताओं में विषयवस्तु की दृष्टि से न केवल विविधता है बल्कि प्रेम के अनेक रंग भी हैं। ये गीत हैं जीवन प्रेम के जो चट्टानों से टकराते हैं।

अपनी कविताओं में वेणु गोपाल ने लेनिन, निराला, चे, मुक्तिबोध, शमशेर को लेकर जो वक्तव्य दिया है, वह फैंटेसी की तरह लगता है। मैं नहीं समझता कि कवि को अपनी कविताओं के अतिरिक्त कोई वक्तव्य देने की जरूरत होनी चाहिए।

प्रस्तुत कविता-संग्रह में वेणु गोपाल की कविताएँ चार शीर्षक खंडों में—'वक्त होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हुआ चेहरा', 'यही समय है प्यार', 'आइना होते हैं दोस्त' और 'मेरे सामने है वह ब्लेक मेलर' संगृहीत हैं। इन कविताओं में वेणु गोपाल के निजी प्रेम संघर्ष के क्षण तो हैं ही पूँजीवादी व्यवस्था के वे तन्त्र भी हैं जिन्हें कवि बेनकाब करता है। लेकिन एक तैयारी भी है—

'दाँतों को इस कदर मजबूत बना रहा हूँ
कि मौका पड़े तो मगर की पीठ में गड़ जाएँ
और पंजों को इस लायक
कि शार्क की गरदन जकड़ लें
तो उसे फरिश्ते की याद आ जाए।' (पृ० 23)

इस संग्रह में फूल भी हैं, पत्थरों में गोता खोरी भी, जहाँ 'कविता इन्तजार कर रही है।' फिर अँधेरे के खिलाफ होते हुए कवि को 'तुम' मिलती है जिसे कवि रोशनी की तरह इस्तेमाल करना चाहता है। 'जब हम तुम मिले' (प्यार कविताएँ) एक त्रासदी है। 'आइने होते हैं दोस्त' एक अच्छी कविता है। 'ब्लैक मेलर' कविता उन्होंने कहा है—

जरूरी था कि मैं हथियारों की जाँच कर लेता है और
कारवाई के लिए मुनासिब हथियार चुन लेता। मैंने
अपने पास के हथियारों पर नजर डाली। कलम
और कविताएँ। बस ये ही तो।
कलम तो उससे टकरायेगी नहीं कि चूर चूर
हो जाएगी। कविताओं
को तो वह फाड़ फूड़ कर हवा में उड़ा देगा।' (पृ० 111)

इस तरह इस संग्रह में भी चट्टानों से टकराते हुए वेणु गोपाल का अतिक्रान्तिकारी उग्रवामपन्थ स्पष्ट है। समकालीन हिन्दी कविता को उग्रवामपन्थी रुझान ने किस तरह सही लीक से हटाया है यह जानने के लिए यह संग्रह देखना जरूरी है●●

वाणी की व्यथा[1]

हरदयाल

छायावादोत्तर काल में गीतकारों की एक ऐसी पीढ़ी सामने आयी जो अपने व्यक्तिगत सुख-दुख की अनुभूतियों को सीधी-सरल भाषा में अभिव्यक्ति देती थी। इस पीढ़ी की अनुभूति में भी जटिलता नहीं थी, न इसकी अभिव्यक्ति में। फिर भी इस सीधी-सरल अनुभूति और अभिव्यक्ति में कविता थी। यह कविता उस संवेग में थी जो इनकी रचनाओं में बराबर प्रतिबिम्बित होता था। जहाँ यह संवेग नहीं होता था वहाँ इनकी रचनाएँ सपाट पद्यबद्ध अभिधा या वक्तव्य बन कर रह जाती थीं। ऐसा तब प्रायः होता था जब ये कवि अपने

1. वाणी की व्यथा, ले० शिवमंगल सिंह 'सुमन', प्र० राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी रोड, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 15·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्तिगत अनुभव के दायरे से निकल कर सामूहिक अनुभव के साथ जुड़ने का प्रयत्न करते थे। इनमें से कुछ लोग जब प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ जुड़े तब नारेबाजी से आगे कम ही जा पाये। ये सारी प्रवृत्तियाँ यदि एक साथ किसी कवि में देखनी हों तो शिवमंगल सिंह 'सुमन' में देखी जा सकती हैं। यही कारण है कि उनके नये कविता-संग्रह 'वाणी की व्यथा' में, जिसमें आठवें दशक में लिखित उनकी कविताएँ संगृहीत हैं, कविता कम है, पद्यबद्ध अभिधा अधिक है।

'वाणी की व्यथा' की कविताओं में विषयगत एवं वस्तुगत विविधता इतनी अधिक है कि उसमें एकसूत्रता खोज पाना कठिन है। अनेक विषय हैं, प्रेम से लेकर राजनीति तक, जिन पर 'सुमन' ने कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं में उनकी कोई जीवन दृष्टि उभर कर नहीं आती। कभी वे सामन्तवादी शौर्य के पतन पर दुखी होते हैं ('यादों की ठोकरें'), तो कभी मार्क्सवादी बन कर सरमायादारों की पराजय और अवाम की विजय पर हर्ष व्यक्त करते हैं। ("विजय का वर्चस्व') और कभी वे गाँधीवादी दिखायी देते हैं ('पैट्रिस लुमुम्बा के अभिनन्दन में')। इन परस्पर विरोधी जीवन दृष्टियों की एक ही संग्रह की कविताओं में अभिव्यक्ति इन बात को प्रमाणित करती है कि जीवन के प्रति कवि की अपनी कोई दृष्टि नहीं है। हमारी मान्यता है कि जीवन के प्रति विशेष दृष्टि विकसित किये बिना कोई कवि महत्त्वपूर्ण एवं बड़ा कवि नहीं बन सकता।

सुमन के इस कविता-संग्रह में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो पूरी की पूरी एक सूक्ति हैं। पहली ही कविता 'समाराधन' इसका उदाहरण है। कवि कहता है हिमालय कितने दिनों से गल रहा है लेकिन अभी तक रीता नहीं है। क्या इसलिए कि अन्तर्मन का दान अजस्र होता है? चुकता वही है जो समेटकर बैठ जाता है। इसलिए—

पत्थर की छाती में / लहरों का उद्वेलन /
जीवन का ज्वार ही / प्रशान्त का समाराधन। (पृ० 9)

'मुखर मौन' कविता प्रेम के उस अनुभव को व्यक्त करती है जो दो प्रेमियों की शब्दहीनता की स्थिति में होता है। शब्दहीन अनुभव का यह व्यापार प्रकृति में भी चलता रहता है। इसे शब्दों के द्वारा नहीं कहा जा सकता। कवि का यह कहना ठीक है कि—

ऐसी निस्पन्द निःशब्द / बतकही तो /
महसूसी जाती है सिर्फ / साँसों की ऊष्मा में। (पृ० 10)

'नेक दिल' कविता में कवि ने उन बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य किया है जो बड़े आराम से जीवन जीते हैं और दीन-दुखियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हैं। 'मधुमालती' कविता में कवि ने अपने जीवन के सम्बन्ध में यह सूचना दी है कि वह जहाँ भी घर बनाता है वहाँ मधुमालती और रजनीगन्धा अवश्य लगाता है। यह उसके लिए जीने का एक बहाना है। 'प्रायश्चित्त' कविता गाँधी जी से सम्बन्धित है जिसका मूल स्वर पश्चात्ताप का है कि गाँधी के सपनों का भारत हम नहीं बना पाये। 'बाहर बर्फ गिर रही है आओ चले घूम आयें' मास्को में मौसम की पहली बर्फ गिरने पर लिखी गयी साधारण कविता है।' 'वाह री वाग्मिता' में कवि का कहना है कि जब चारों ओर दरिद्रता का माहौल हो तब—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऐसे माहौल में / गढ़ना साहित्य-सौध / सबसे बड़ा है मखौल / सर्जक के दम्भ का।
(पृ० 24)

ऐंसी ही भिन्न भिन्न बातें कवि ने अपनी भिन्न भिन्न कविताओं में कही हैं। इन कविताओं में संवेग है लेकिन बहुत हल्का। कलात्मक चमत्कार इनमें नगण्य है। चीजों को देखने की दृष्टि सतही और आम है। कवि भावना या विचार के स्तर पर गहरे प्राय: नहीं उतरता है। इसीलिए ये कविताएँ हमारे ऊपर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ती हैं॰॰

नरक को कभी शर्म नहीं आती[1]

सुधेश

प्रस्तुत पुस्तक में हरीश पाठक की 35 कविताएँ संकलित हैं। यह कवि का पहला काव्य-संकलन है।

हरीश पाठक की कविता के विषय यों तो विविध हैं, पर इन कविताओं के अवलोकन से प्रतीत होता है कि नगरीय जीवन की विसंगतियाँ, मध्यम वर्ग के अन्त:संघर्ष और उसकी आशाएँ-निराशाएँ उनकी कविता के मुख्य विषय हैं। कहीं कहीं वे विद्रोही और क्रान्तिकारी मुद्रा धारण करते हैं, पर अगली पंक्तियों में वह मुद्रा 'चाय के प्याले में तूफान' सी बन कर ठंडी हो जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कवि किसी एक भाव, अनुभूति, मूड या प्रसंग के सम्यक् चित्रण अथवा उसके विम्व निर्माण से पहले दूसरे प्रसंग पर झपट पड़ता है और फिर उसे भी छोड़ कर वह अन्यत्र पहुँच जाता है। इस प्रकार उनकी अधिकांश कविताएँ असम्वद्ध, खंडित विम्वों का संग्रह बन कर रह जाती हैं। इस शिल्पगत असम्वद्धता का कारण यह है कि कवि अपनी मध्यमवर्गीय स्थिति का अतिक्रमण कर निम्नवर्ग और निम्न मध्यम वर्ग की उन शक्तियों से भावात्मक एकता स्थापित नहीं कर पाता, जो वर्तमान स्थितियों से असन्तुष्ट ही नहीं, उन्हें बदलने के लिए भी व्याकुल हैं, जिनके लिए विद्रोह करना एक विवशता और अनिवार्यता है। मध्यम वर्ग के कवि के लिए मध्यवर्ग की मानसिकता रखना कोई पाप नहीं है और उसका अतिक्रमण न कर पाना अनेक हिन्दी कवियों की नियति है। पर हरीश पाठक की कठिनाई यह है कि वे जो कहना चाहते हैं, उसे खुल कर और सम्यक् रीति से नहीं कह पाते। 'सम्यक् रीति' से मेरा आशय सर्वांगीण अथवा सम्पूर्ण चित्रण की पद्धति से नहीं है। मेरा तात्पर्य स्पष्ट चित्रण अथवा सपाटवयानी से है। शायद सपाटवयानी से वचने के लिए हरीश पाठक ऐसी निगूढ़ कल्पनाओं एवं असम्वद्ध प्रतीकों तथा खंडित विम्वों का सहारा लेते हैं, जिनसे कभी ऐसा लगता है कि उनके पास कथ्य का अभाव है और इस अभाव को वे कृत्रिम वक्रोक्ति अथवा शिल्पगत उपायों से भरना चाहते हैं। उदाहरण के लिए 'सरहदें' शीर्षक कविता को देखें। इस लम्बी कविता में चित्रित प्रसंगों का शीर्षक से वादरायण सम्वन्ध ही होगा। इससे एक उद्धरण देखिये :—

---

1. नरक को कभी शर्म नहीं आती, ले० हरीश पाठक, प्र० मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, ई-135।1, रवीन्द्र मार्ग, भोपाल-2, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 96, सजिल्द, मूल्य 15·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'मैं लाँघ चुका हूँ वे सारे पुल / जिनसे / वे सब एक निर्णय पर पहुँच कर / सुस्ता रहे हैं / सबने अपना अपना हक़ और हस्तक्षेप / हासिल कर लिया है / बाँध लिया है मेरी देह को / सवालों और नतीजों को / बर्फीली सरहद से।' (पृ० 25)

प्रथम पंक्ति में 'मैं' के पुल लाँघने के संकेत के बाद उन लोगों की सूचना दी गयी है जो 'सुस्ता रहे हैं' और जिन्होंने 'हक़' और 'हस्तक्षेप' में तालमेल स्थापित कर लिया है। 'हक़' और 'हस्तक्षेप' में किसी संगति को न भी खोजा जाए, पर कैसा हक़ और किसमें हस्तक्षेप, यह तो पूछा ही जा सकता है। 'हस्तक्षेप' में जोर जबरदस्ती का भाव निहित होता है, जिसमें किसी की आज्ञा लेने का तो प्रश्न ही खड़ा नहीं होता, वरन् उसके विरोध के बावजूद हस्तक्षेप किया जाता है। पर कवि के शब्दों में हस्तक्षेप हासिल कर लिया गया है, मानो वह कोई ऐसी वस्तु हो जो पहले एक हाथ में थी, फिर दूसरे हाथ में चली गयी है। कवि शब्द की आत्मा का पारखी होता है या उसे होना चाहिए, पर उक्त उद्धरण से ऐसा ज्ञात नहीं होता।

एक अन्य कविता है 'साँप'। उसकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'सोने से पहले / कपड़ों के भीतर से झाँकती / बेचैन आँख की / कोई शर्त्त / पूरी नहीं होती / सिर्फ / गुनगुनी नदी / सूखने के लिए / बहती रहती है।' (पृ० 47)

मुश्किल यह है कि यह कबीर की उलटबाँसी भी नहीं है, जिसमें रहस्यात्मक संकेत ढूँढ़े जा सकते हैं। 'गुनगुनी नदी' को यदि गर्म आँसुओं की धारा का प्रतीक मान लिया जाए, तो सपने के दृश्यचित्र रूपी साँप (रूपक) से इसकी संगति नहीं बैठती।

एक अन्य कविता का यह अंश देखिए—

'पुर्जों को जेब में रखता हुआ शहर / कपड़े फाड़ कर/ आँखों को खिड़कियों पर चिपकाता है।' (पृ० 49)

कहीं कहीं तो कवि कविता के बजाए पहेली लिखने लगा है। 'रेत के कपड़े पहन कर' शीर्षक रचना इसका उदाहरण है। कविता वक्रोक्तिपूर्ण हो सकती है, पर पहेली और कविता में अन्तर है।

इस संग्रह में कुछ अच्छी कविताएँ भी हैं—जैसे 'वक्त की फसल इसी तरह फलती रही है', 'करवट', 'फ़िलवक्त', 'हाथों की भाषा में' और 'कुछ तो करना होगा' आदि। प्रथम कविता की ये पंक्तियाँ देखिये—

'अभी भी महीने की पहली तारीख / दफ्तर में भीड़ / चेहरे पर खुशी और नाक पर झुकी / ऐनक खिसकाते अधबूढ़े के हाथ / मुस्कराते हुए नोट गिन रहे हैं / और हर आखिरी तारीख को / पिता के काँपते हाथ बच्चों की / बचत का डिब्बा तोड़ रहे हैं।' (पृ० 29)

यहाँ एक नौकरीपेशा व्यक्ति की आर्थिक विपन्नता की यथार्थ अभिव्यक्ति है। इसमें कोई अतिरंजना नहीं है और न दूर की कौड़ी लाने का कृत्रिम चमत्कार है। 'चेहरे पर खुशी' और 'मुसकराते हुए नोट गिनने' के बाद 'काँपते हाथ' परिस्थिति का ऐसा वैषम्य उपस्थित कर देते हैं कि पाठक कवि के अभिप्रेत को सहज ही पा लेता है। जहाँ कवि उलटे सीधे प्रतीकों, असम्बद्ध एवं खंडित बिम्बों के चक्कर में नहीं पड़ा है, वहाँ उसकी रचना सहज, मार्मिक और प्रेषणीय बन पड़ी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस संग्रह की कुछ कविताओं की भाषा स्वच्छ एवं प्रेषणीय है और कुछ की उलझी हुई और दुरूह। लगता है कि कवि अपना मुहावरा नहीं पा सका है। कवि की रचनाओं में भाषा की एकरूपता आवश्यक नहीं है। कथ्य के अनुसार भाषा का रूप बदलता जाता है। पर कवि की भाषा में ऐंसा कुछ होता है, जिससे वह दूसरों से अलग पहचाना जाता है। यह कवि का अपना मुहावरा होता है। यह शब्दों एवं स्थितियों से लम्बी लड़ाई के बाद प्राप्त होता है। मेरा विश्वास है कि हरीश पाठक भविष्य में इसे प्राप्त कर लेंगे और वे अभिव्यक्ति की दुरूहता को नहीं, उसकी सहजता एवं प्रेषणीयता को महत्त्व देंगे●●

वृत्त एक : बिन्दु अनेक[1]

जगदीश चन्द्र 'जीत'

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में वचनदेव कुमार की 61 छोटी बड़ी कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये कविताएँ कवि की विभिन्न मनःस्थितियों का परिचय कराती हैं, जिसकी झलक प्रत्येक रचना में स्पष्टतः मिलती है। इस संग्रह को धर्म, दर्शन, समाज और व्यक्तिपरक रचनाओं का गुच्छ कहना संगत होगा।

साधारणीकरण का गुण प्रस्तुत संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि है। भाषा प्रसादगुण युक्त है और कवि को इस पर सम्पूर्ण अधिकार है। कवि ने कहीं प्रतीक शैली का प्रयोग किया है तो कहीं सपाटबयानी का, जो अच्छा लगता है। दोनों शैलियों का सामंजस्य इस कविता-संग्रह की प्रमुख विशेषता है। 'ओ महावीर', 'हर घर में आ जाओ' 'कैसे चल सकता है देश' और 'कलाकार' शीर्षक रचनाएँ सपाटबयानी के स्पष्ट प्रमाण हैं।

'तेरा नाम' संग्रह की पहली रचना है जो कवि की प्रणय एवं भक्ति भावनाओं को ध्वनित करती है। कवि मात्र भक्ति भावना में ही बहता रहा हो, ऐसी बात नहीं है। 'अश्रु अर्पण' कविता में कवि ने अपने देश सम्बन्धी दुःखों को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया है :

'जिस देश में भर पेट भोजन के लिए / राशन नही / महज सर छुपाने के लिए / खुला आसमान न हो / उस देश में / नारों की फसल बोयी जाती है / वादों की बरसात लायी जाती है।'

वास्तव में, कवि ने बड़ा तीखा व्यंग्य किया है देश की हालत पर। 'पूजा' शीर्षक रचना में कवि ने आधुनिक स्वयंभू भगवानों की अच्छी खबर ली है :

'पर अब इस धरती पर बहुत सारे / नये भगवान् अवतरित हो चुके हैं। / वे असाधारण आदमी थे / ये असाधारण आदमी का ढोंग रच रहे हैं।' (पृ० 42)

कवि को 'जीवन प्रवाह' के दिन प्रति दिन होते जा रहे छोटे दायरे से बहुत दुख होता है।

'हम सब / घिर गये हैं स्वनिर्मित / छोटे छोटे द्वीपों में। / इसलिए / न बह पाते हैं जीवन प्रवाह में / न समझ पाते अन्तरग्रन्थी अखंडता को।' (पृ० 52)

---

1. वृत्त एक : बिन्दु अनेक, ले० वचनदेव कुमार, प्र० पारिजात प्रकाशन, पटना-1, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कवि देश की दयनीय स्थिति से अत्यन्त दुखी है। इसकी स्पष्ट झलक 'कैसे चल सकता है देश' शीर्षक रचना में पठनीय है :

"देश टूट रहा है / धर्म के नाम पर / सम्प्रदाय के नाम पर / उच्च वर्ग—निम्न वर्ग के नाम पर / हिन्दू-मुसलमान के नाम पर / ईसाई-सिक्ख के नाम पर / आदिवासी-गैर आदिवासी के नाम पर / क्षेत्र के नाम पर / जाति के नाम पर / भाषा के नाम पर / खंड खंड टूटा यह देश / कैसे चल रहा है भगवान जाने।" (पृ० 72-73)

निश्चय ही प्रस्तुत काव्य-संग्रह भाषा, भाव, और व्यंजना की दृष्टि से सराहनीय है।●●

बदलते भाव : उभरते स्वर[1]

कृष्णचन्द्र लाल

'बदलते भाव : उभरते स्वर' जगदीश चन्द्र 'जीत' की नयी-पुरानी कविताओं, गीतों और ग़ज़लों का प्रथम संग्रह है। कवि ने लिखा है कि 'इसमें मेरे मानस में यदा कदा उठने वाले भाव एवं स्वर पुंजीभूत हैं। मेरा कवि मन सदैव परिस्थितियों से प्रभावित हुआ है। हाँ, यह बात अलग है कि मैं कुछ परिस्थितियों से तो अवश्य अधिक प्रभावित हुआ लेकिन बहुत सी ऐसी परिस्थितियों को मैंने अपने कवि-कर्म में आड़े नहीं आने दिया।' कहा जा सकता है कि कवि ने इन शब्दों में अपनी काव्य-रचना की दृष्टि और दिशा को बड़ी ईमानदारी के साथ स्पष्ट कर दिया है। आलोच्य संग्रह की कविताओं को पढ़ कर भी यही एहसास हुआ कि इनका कवि न तो हवाओं के झोंकों में उड़ने वाला है और न किसी के पीछे अन्धी दौड़ लगाने वाला। उसकी अपनी अस्मिता और चेतना है। वह वही लिखता है जो उसके भीतर से उत्पन्न होता है और इसकी परवाह कतई नहीं करता कि उसके बारे में लोग क्या सोचेंगे-कहेंगे। यही कारण है कि उसकी कविताओं में सत्य को उदघाटित करने वाली निर्भीकता है। हमारे देश की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में जो 'नेताई खिलवाड़' चल रहा है उस पर कवि ने जैसी सीधी चोट की है वह उसके आक्रोश का अच्छा उदाहरण है—'हे देश के कुर्सी-प्रेमी नेताओ ! / अब तो चेत जाओ / क्यों खिलवाड़ करते हो / हमदर्दी का दम भरते हो / चुनाव के दिनों / हाथ जोड़ जोड़ कर / अच्छे हैं भिखारी तुम से / जो लेने के बाद / आशीष देते हैं।" (पृ० 44)

'जीत' की कविताओं में व्यंग्य, आक्रोश, विरोध का स्वर काफी मुखर है। कवि आज की परिस्थिति से किसी प्रकार सन्तुष्ट नहीं है। राजनीति में स्वार्थ, छल-कपट और भ्रष्टाचार की जो नग्न-लीला हो रही है उससे मनुष्यता के समाप्त हो जाने की आशंका है। कवि की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि आज किसी का 'दिल' साफ़ नहीं रहा और न उसमें कोमलता, आर्द्रता ही रह गयी है—'आज लोगों के दिल / ऐसे हैं / जैसे/कनॉट के प्लेस पिछवाड़े की सड़कें /

---

1. बदलते भाव : उभरते स्वर, ले० जगदीशचन्द्र 'जीत', प्र० श्रीशान्ति कुंज प्रकाशन, ए-2014, मीरा मार्ग, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-7, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 48, सजिल्द, मूल्य 6·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या- / कॉरपोरेशन के ओवरसीयरों / या- / बीमा कम्पनी के एजेन्टों / अथवा / सिनेमाघरों के गेट-कीपरों की तरह / गन्दे / रिश्वतखोर / नटखट / और ब्लेक मार्केटिये।" (पृ० 39) यदि काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इन पंक्तियों की समीक्षा की जाय तो कहना पड़ेगा कि कवि ने क्रमालंकार का बड़ा ही अच्छा एवं सार्थक प्रयोग किया है। अपनी इस कला से उसने लोगों के 'दिल' का ही परिचय नहीं दिया है बल्कि विभिन्न पेशे के लोगों की मनोवृत्ति पर भी करारी चोट की है। लोगों के 'दिल' किस तरह जड़, संवेदना शून्य हो गये हैं इसके लिए कवि ने एक अच्छी उपमा चुनी है—'रावण के दरबार में अंगद के पाँव'—'कोई चाहे इन्हे / जितना धो ले, धुला ले / समझा ले, बुझा ले। या-/ सिर अपना खपा ले / लेकिन / ये टस से मस होने वाले नहीं / मानो-/ रावण के दरबार में-/ सभी अंगद के पाँव हों।' (पृ० 39)

यहाँ कवि ने 'अंगद के पाँव' के पौराणिक अर्थ की थोड़ी सी क्षति की है किन्तु उसका जो अभिप्रेत है वह भलीभाँति व्यक्त हो गया है।

आज का मनुष्य इस तरह आत्मसीमित, स्वार्थी, पदलोलुप और धनलोभी हो गया है कि प्रेम, सौहार्द, ममता जैसे मानवीय मूल्य भी उसके निकट अर्थहीन हो गये हैं। आज 'मित्रता तुलने लगी है / 'स्वार्थ के बाटों पर / और लद गया है वह समय / जब-/ दोस्त / दोस्त की मदद करता था।' आज धोखा ही मिल रहा है 'मित्र से / कलम से / और- /सर्वत्र से।' कवि की सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि 'यहाँ दिल और जुबान / किसी के साफ नहीं / और-/ व्यापार की तरह / ये चीजें, तुलती हैं / बिकती हैं / खुले आम।' (पृ० 25) अपनी इसी चिन्ता के तहत कवि ने मानवता के संदेशवाहक स्वामी विवेकानन्द को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और उन्हीं की दो मूर्तियों में से एक पर पक्षियों के द्वारा बीट किये जाने पर खेद भी प्रकट किया है किन्तु वह कुछ कर नहीं सकता इसलिए वह अनुरोध करता है—'हे स्वामी जी! क्षमा कर देना मुझे / क्योंकि / कुछ भी कर सकने में मैं असमर्थ हूँ / सिवाय / दो आँसू बहाने के।' यही आज के मनुष्य की सबसे बड़ी विडम्बना है कि वह गलत को सही करने या अनुचित को उचित बनाने की दिशा में अपने को अग्रसर नहीं कर पा रहा है।

'जीत' की कविताओं में जो विचारोत्तेजना है वह उनके गीतों या ग़ज़लों में नहीं है। उनके गीतों में भक्ति-संवेदना का प्राधान्य है और ग़ज़लों में सतही अभिव्यक्ति। उनकी कविताएँ अनुभव और विचार की ताजगी से सम्पन्न हैं। यदि कवि उनके शिल्प का थोड़ा सा परिष्कार कर ले तो वह हिन्दी-साहित्य को अच्छी कविताएँ दे सकता है●●

तृष्णांकित[1]

नीरजा टंडन

'तृष्णांकित' कुसुम कुमार का 54 फुटकल कविताओं का पहला संग्रह है। तीन खंडों में बँटी इसकी कविताएँ कवयित्री की गहनानुभूतियों को सीधे शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति देने

1. तृष्णांकित, ले० कुसुम कुमार, प्र० सरस्वती विहार, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 91, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में प्रयत्नशील हैं। कविताओं में प्रतिपाद्य की दृष्टि से विविधता है किन्तु, अधिकांशतः बीते हुए की याद में निराशाजनित भाव कवयित्री के मन में उठते हैं—समय ने पीछा किया / और प्यार है कि थक गया है / राजरथ का सवार था न ! / थक गया है।' 'प्यार की पदयात्रा', 'ऋतु वसन्त', 'इस बीच', 'मेरे लक्ष्य', 'स्थावर जंगम', 'क्या सीखा हमने', 'उस दिन तुम'; 'सवाल देवता' 'प्रौढ़ा नायिका हैं ये', 'वक्त से प्रतिकार' इत्यादि कविताओं का कथ्य इसी निराशा, और टूटन को अभिव्यक्त करता है।

कविकर्म के प्रति कवयित्री में सजगता है। सहज शब्दों द्वारा, अकृत्रिम शिल्प के माध्यम से, विविध अर्थसन्दर्भों का आभास देना इन कविताओं की प्रमुख विशेषता है। ये कविताएँ कवयित्री की एक ऐसी आग, ऐसी तृष्णा, ऐसी कामना की अभिव्यक्ति हैं जो कई रूपरंग लिए हुए कवि हृदय की सुकोमल अनुभूतियों को प्रतिविम्बित करती हैं—'अव्यक्त का बोझ/उठाए नहीं उठा जब / हम व्यक्त हो गये।'

अपनी इस तृष्णा को व्यंजित करने के लिए कवयित्री को केवल सही शब्दों की तलाश ही नहीं है; शब्द तो उनके विषय को अनायास व्यक्त करते हैं / वह तो 'मेरी तृष्णा / मेरी आग / और ये कामनाएँ / मेरी ही आँखो की जाली / साफ करती हैं / मैं लिखती हूँ / आसान हुई / कितनी बार जब / कविता मेरे साथ / टहलने निकलती है' कह कर अपना अभिप्रेत स्पष्ट कर देती हैं कि कविता उनके लिए मात्र कविता ही नहीं है, वैचारिक धरातल पर उनकी सहयोगिनी भी है, किसी सत्य का उससे मिलना है।

इन कविताओं में लाक्षणिकता का अभाव है। कहीं कहीं शब्दों का वीप्सागत प्रयोग अच्छा बन पड़ा है—'धार पर धार पर धार / पर चलते-चलते / धारावत बही हूँ / तो क्या है? / विरोधों की धार पर गिरी हूँ।' पर कहीं कहीं यह प्रयोग निरर्थक भी हो गया है—'दिन को तारे / रात को नजारे, नजारे, नजारे।' प्रतीक कम हैं और उबाऊ भी—'ओठों की चौपाल में / प्यार एक मक्खी है। × × चिनगारियों की चमत्कार में / प्यार एक चूल्हा है' पढ़ कर शृंगार रस की अनुभूति के स्थान पर उबकाई आती है।

कुल मिला कर प्रस्तुत संग्रह की 'तृष्णांकित', 'मुक्त किए शब्द', 'वसन्त अब', 'मेरे लक्ष्य', 'इस बीच', 'द्वन्द्व', 'प्रौढ़ा नायिकाएँ हैं ये' इत्यादि कविताएँ कवयित्री के कवित्व के प्रति आश्वस्त करती हैं●●

हिन्दी उपन्यास कोश

(खंड १-२)

ले० डा० गोपाल राय

प्रकाशक

ग्रन्थ निकेतन, पटना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक बूँद और[1]

हरदयाल

यह वटुक जी का हिन्दी में सातवाँ कविता-संग्रह है। अँगरेजी में भी उनके छह कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अँगरेजी की मैं नहीं जानता लेकिन हिन्दी में कवि रूप में वेदप्रकाश 'वटुक' से परिचितों की संख्या नगण्य है। इसका कारण यह नहीं है कि वे विदेश में रहते हैं या उनकी कविताओं की हिन्दी में जान बूझ कर चर्चा नहीं की गयी है बल्कि इसका कारण यह है कि उनकी तथाकथित कविताओं में न वैचारिक प्रखरता है, न गहन संवेदना है और न तीव्र इन्द्रिय बोध है। पता नहीं, किस दृष्टि से अज्ञेय ने समीक्ष्य संग्रह की भूमिका में लिख दिया है कि "...कवि-कलाकार वटुक एक मंजिल पर पहुँच गया है; कि उसने वह समग्रता पा ली है जिसमें संवेदन, वस्तु, भंगिमा और शैली का अलग अलग विचार कोई माने नहीं रखता। वहाँ एक समग्र कलाकृति सामने आती है। जिसके सौष्ठव और जिसकी सहज मितव्ययिता का अपना एक स्वायत्त संसार होता है जिसे रचना की दीप्ति आलोकित करती है।" 14 मई और 30 दिसम्बर 1973 के बीच लिखी कविताओं में से चुनकर प्रस्तुत की गयी 101 कविताओं के साथ जुड़ी अज्ञेय की भूमिका आशीर्वाद जैसी प्रतीत होती है। इस संग्रह की कविताओं में क्रमांक 52 से 78 तक की कविताएँ भारत में लिखी गयी हैं, शेष अमरीका और यूरोप में।

कुछ गिनेचुने भाव और विचार हैं जो 'एक बूँद और' की कविताओं में प्रकट किये गये हैं। एक वर्ग प्रेम सम्बन्धी भावों एवं विचारों का है। प्रिय सम्बन्धी भावना या विचार को व्यक्त करने वाली एक कविता उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

> अपनी मुट्ठी में बन्द कर / जीवन का सारा प्यार /
> तुम्हारे वक्ष पर / सोती रही मेरी हथेली /
> लुट न जाये कहीं सारा धन / सोच कर पकड़े रही तुम /
> बाँह वह मेरी अकेली। (पृ० 71)

किसी विशेष सन्दर्भ की ओर संकेत करने वाली ये पंक्तियाँ कवि के लिए कितनी भी अर्थगर्भित हो सकती हैं, लेकिन साधारणीकरण के स्तर पर ये सपाटता से आगे नहीं बढ़ पाती हैं। एक भावना-वर्ग विदेश में रह रहे व्यक्ति का अपने को अकेला अनुभव करने का है। एक नमूना देखें—

> बृहद् कारावास के अकेलेपन से / अच्छा था /
> भीड़ से दब जाना / अपनत्व से घुट जाना दम /
> कब होगा ओ मन / स्वयं निर्वाचित कारावास से /
> मेरा निर्वासन ? (पृ० 43)

इस संग्रह में इसी प्रकार की फुटकर भावनाएँ एवं विचार व्यक्त किये गये हैं। इस संग्रह की कविताओं में कोई ऐसी शिल्पगत विशेषता भी नहीं है, जो हमारा ध्यान आकर्षित करे●●

---

1. एक बूँद और, ले० वेदप्रकाश 'वटुक', प्र० भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 104, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋतु वृन्दावन[1]

कृष्णचन्द्र लाल

यों तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में प्रकृति विभिन्न ऋतुओं के अनुसार रंग बदल-बदल कर सुख-दुख का संचार करती रहती है किन्तु बहुत कम लोग होते हैं जिनका हृदय उसके बहुरंगी व्यक्तित्व से संवेदित होकर गा उठता है। 'ऋतु वृन्दावन' सुरेश श्रीवास्तव के ऋतु सम्बन्धी गीतों का एक ऐसा सरस संग्रह है जिससे यह भलीभाँति जाना जा सकता है कि प्रकृति के प्रति उनमें प्रगाढ़ राग है और उसके हर रूप से उनका घनिष्ठ परिचय है। जब से आधुनिकीकरण और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया तेज हुई तब से मनुष्य का प्रकृति से सहज एवं रागात्मक सम्बन्ध निरन्तर कम होता जा रहा है, अब शायद मनुष्य के पास इतना समय भी नहीं रहा कि वह प्रकृति की सुषमा को देखे, उसे सराहे और उत्फुल्लता में उसके गीत गाये। कृत्रिमता के इस नीरस युग में सुरेश श्रीवास्तव के गीतों को पढ़ कर बड़ा सुख मिलता है।

इन गीतों को पढ़ते हुए हम विभिन्न ऋतुओं के सुखद अनुभव से समृद्ध हो जाते हैं। उनकी राग रंजित अभिव्यक्तियों से कवि की सहृदयता ही नहीं व्यंजित होती बल्कि यह भी ज्ञात होता है कि उसके पास बड़ी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और बिम्बविधायिनी कल्पना शक्ति है। यही कारण है कि वह प्राकृतिक दृश्यों और ऋतुविशेष के सुखद-दुखद वातावरण को बड़े बिम्बात्मक ढंग से अभिव्यक्त करनेमें सफल रहा है। इस दृष्टि से प्रस्तुत संग्रह में 'चार तिनका ऋतुएँ' नाम से संकलित चार गीत विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शीत का जो प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है वह अनुभूति और अभिव्यक्ति की ताजगी का स्पष्ट पता देता है। 'एक तिनका वसन्त' की निम्नलिखित पंक्तियाँ कवि के अनुभव-संसार और उसके अभिव्यंजना-कौशल का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं—

तिनका-तिनका वासन्ती मन
उग आया मधुमास में,
हल्दी-कुंकुम घोल गये दिन,
मौसमदार कपास में।
हरियल उमट-सयानी खुशबू
आमवनी बौरानी,
हवा बजाये पंचम पायल
राग बसन्त हिरानी,
सूरज ने भगवा पहना है,
जंग लगे संन्यास में। (पृ० 13)

गीतकार ने प्रत्येक ऋतु के लिए एक नयी संज्ञा चुनी है जिससे ऋतु विशेष की मूल

---

1. ऋतु वृन्दावन, ले० सुरेश श्रीवास्तव, प्र० परिचय प्रकाशन, हापुड़, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 18·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विशेषता सहज रूप में उद्‌घाटित हो गयी है जैसे वसन्त के लिए 'फूल कांड', ग्रीष्म के लिए 'अग्निकांड' और शरद ऋतु के लिए 'उजाला कांड'।

प्रस्तुत संग्रह के गीत संवेदना की दृष्टि से ही नहीं अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से भी नये और आकर्षक हैं। गीतकार की भाषा अत्यन्त समर्थ और सघन अर्थ वाली है। उसके पास अनुभव सिक्त शब्दावली का भंडार है। एक एक शब्द रागसिक्त और तराशा हुआ है। शब्द प्रयोग में भी नवीनता और प्रवीणता का अद्‌भुत संयोग दिखायी पड़ता है। उसके कुछ नये शब्द-प्रयोग द्रष्टव्य हैं—मौसमदार, कचियल हरियाली, फसलौनी हवा गन्ध, ऊनी दिन, अल्हड़ हरियाली आदि। कुल मिला कर 'ऋतु वृन्दावन' एक अच्छा गीत-संग्रह है जिसमें भाव और शिल्प की नवीनता मौजूद है। इतना अवश्य है कि इसमें आज की हिन्दी कविता की तरह किसी प्रकार की जनपक्षधरता या प्रतिवद्धता का दावा नहीं है और न ही समकालीन गीतों का उसमें तेवर या दृष्टि है किन्तु इसमें संवेदना की मार्मिकता और खरापन पूरी कलात्मकता के साथ मौजूद है। किसी कवि या रचनाकार से उसके स्वभाव के विरुद्ध रचना की माँग नहीं करनी चाहिए। जहाँ तक रचनात्मक ईमानदारी का प्रश्न है, वह इस संग्रह के गीतों में विद्यमान है। यही वह तत्त्व है जिसकी वजह से इसके गीत काफी स्पृहणीय वन पड़े हैं।●●

महामहिम चुप हैं[1]

रामचन्द्र मालवीय

'महामहिम चुप हैं' विनय दुवे का प्रथम काव्य संग्रह है। इसमें कुल बयालीस कविताएँ हैं। 'महामहिम चुप हैं' संग्रह की अन्तिम रचना है। इसी के नाम पर संग्रह का नामकरण हुआ है। फिर भी शीर्षक में सभी कविताओं के मूल भाव छिपे हुए हैं। 'महामहिम चुप क्यों हैं' यह एक यथार्थ है जिसे कवि ने अपने ढंग से नंगा किया है—

'सब कुछ चुप है' / यहाँ सब कुछ उदास है / खून से सना आदमी / आदमी का खून / प्यास भूख / और आकाश की राजनीति / लोगो की चर्चा / अखवारों में खबरें / कुत्तों के रोने तक सब कुछ चुप है / यहाँ सब कुछ उदास है / फिर भी महामहिम चुप हैं।'

'सब कुछ चुप है 'से क्या क्रान्ति के भाव जाग्रत नहीं होते? 'यहाँ सब कुछ उदास है' से क्या सामाजिक दशा का बोध नहीं होता? अवश्य होता है। फिर महामहिम चुप क्यों हैं यह सोचने की बात है। आदमी दो ही दशाओं में चुप रहता है—प्रथम, यदि उसका वस्तु से स्वार्थ जुड़ा हो। अथवा वह मौन रह कर ईश्वर में लोन होना चाहता हो। पर महिम जी का तो इन दोनों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है—फिर वे चुप क्यों हैं। समाज की आशा-आकांक्षाओं के वे दीपक हैं उन्हें तो जलना ही चाहिए और बोलना ही चाहिए। बोलना ही उनका धर्म है—और अधिकार भी और कर्त्तव्य भी।

विनय दुवे की कविताओं से हमारा सामना अपने शहर-कस्वे और आस-पास की रोजमर्रा की चीजों और घटनाओं-दुर्घटनाओं की लगातार उपस्थिति से होता है—

1. महामहिम चुप हैं, ले० विनय दुवे, प्र० परिमल प्रकाशन, 743, मोतीलाल नेहरू नगर, इलाहाबाद, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 68, सजिल्द, मूल्य 12·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सड़क जब तक है / तब तक / शहर है / शहर जब तक है / तब तक । सड़क है / शहर और सड़क / इनके अलावा / मौत की / कोई और सूरत नहीं है / आजकल

कविता पढ़ कर यह शिकायत नहीं रहती कि उसमें संघर्ष, साहस, उग्रता और विद्रोह के जीवन्त चित्र नहीं हैं। काव्य में एक ऐंसी प्रखर प्रभावक्षमता है जो समसामयिक काव्य-संसार के बीच स्पष्ट पहचानी जा सकती है। परम्परा से हट कर विनय दुवे का काव्य नवीन सौन्दर्यबोध की सृष्टि कर सका है। जीवन के सारे खट्टे मीठे अनुभवों को आगे बढ़ कर कविता में उन्होंने स्वीकार किया है और ईमानदारी और साहस के साथ कविता को यथार्थ की ओर मोड़ने का भरसक प्रयास किया है—

भूख का सम्बन्ध / कविता से है / और लड़की का / प्रेम से / मैंने दोस्त से पूछा / क्या तुम / भूख की ओर से निश्चिन्त हो / उसने जवाब की जगह / मुझ से तीन रुपये लिये / और एक भोजनालय में घुस गया।

भूख का सम्बन्ध न तो कविता से है और न लड़की का सम्बन्ध प्रेम से है। वस्तुतः यह तो एक सामाजिक सत्य है कि मनुष्य कविता को भी अपनाता है और भूख को भी तथा लड़की को भी और उसके प्रेम को भी। विनय दुवे ने इसी सामाजिक सत्य को पहचाना है। सामाजिक यथार्थ को सामने ला सकने वाली विनय दुवे की प्रारम्भिक पैनी दृष्टि प्रशंसनीय है। 'महामहिम चुप हैं' में जीवन के प्रति, समाज तथा भविष्य के प्रति उनकी निष्कम्प आस्था है, तभी वे पेट की आग को देखते हैं और हर चीख को सुन कर व्यवस्था से लड़ने को तैयार हैं—

और पेट में आग लिए / किसी आदमी का सामान्य होना / मेरे लिए एक अजूबा था / और यह प्रायः होता है मेरे साथ / अब तै है / कि मैं लड़ूगा / मैं हर उस चीख से लड़ना चाहता हूँ / जो चीख होती है / चीख जैसी / चीख मेरे अन्दर है / मेरे खेत में है / मेरे घर में है / मेरे आसपास है / और मैं / इस चीख से / लड़ने पर आमादा हूँ / यह हो सकता है / कि चीख मुझे मार डाले।

जब चारों ओर चीख और दर्द की आवाजें सुनाई दें; रोटी पर मक्खन का जुल्म हो, फिर जनकवि चुप कैसे रह सकता है? विनय दुवे की कविताएँ इन्हीं विचारणाओं से संघर्ष करने वाली कविताएँ हैं

"......बहुत अन्त खोजा, नहीं हो सकी इति !
रही आदि-अथ के बारे में अनिश्चिति !
सुनिश्चित यही, यही हो, यहाँ तुम !

इस कृति में संगृहीत कुछ कविताएँ विषयान्तर के कारण बोझ सी प्रतीत होती हैं—जैसे, 'दैनिक-पत्र', 'वीर' और 'एक बात'। कुछेक इतिवृत्तात्मक हैं, यथा 'महाजाति के जीवन में', 'भाव-कुसुम', 'स्वागत गीत' और 'गीता प्रार्थना'।

कृति अपनी प्रस्तुति में निर्दोष और राजपाल एन्ड सन्स की प्रकाशकीय गुणवत्ता के अनुरूप है●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृणवेणु[1]

शंकरदयाल सिंह

'तृण वेणु' डॉ० श्रीनिवास की सद्यः प्रकाशित काव्यकृति है, जिसमें 'स्वयम्भू' कविताएँ हैं। पढ़ने से कभी भी ऐसा आभास नहीं होता कि कवि ने कविता लिखने या गढ़ने का प्रयास किया है, जो कुछ भी है वह आत्मसात है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को देखें—

'भीख माँगने गयी सुहागिन।
संसद् में आ लुटी अभागिन॥'

× × ×

'धूप-छाँव की तितली बन कर,
उड़ती रहती हवा निरन्तर।'

× × ×

कोतवाल से बोला कातिल :
तुम हो काहिल, हम हैं जाहिल।

'तृणवेणु' की दो कविताएँ '96 वें' और '97 वें, 98 वें और 99 वें' अपने आप में एक विधा हैं। दोनो कविताएँ अनूठी हैं तथा अबूझ होकर भी मर्मव्यथा की अभिव्यक्ति में अद्वितीय हैं मेरी समझ में डॉ० श्रीनिवास के अतिरिक्त किसी से यह प्रयोग सम्भव भी नहीं था।

इसी प्रकार संग्रह की एक लम्बी कविता 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' अद्भुत है। शब्दों का, अनुभवों का, जीवन्त स्रोतों का तथा रोजमर्रा के लुप्त होते आखरों का विशाल भांडार कवि के पास है। जीवन की धड़कनों का एहसास 'आले' से हर चिकित्सक के लिए सम्भव है, लेकिन कलम उन्हें इस चेतनशीलता से पकड़ ले, यह स्थिति अवाक् कर देती है।

कान दिये तो सुनें सुहावन
राग, रागिनी, सोहर, झूमर
गप्प, लतीफे, हँसना, रोना,
कव्वाली, गजलें, र्‍यूमर।
कोलाहल, कलरव, किलकारी,
गाड़ी का भोंपू बजना
घड़ी-घंट, साइकिल की टुनटुन,
चंडी-पाठ, भजन, कीर्त्तन।
कानों में फुसफुस करना,
गेवाने में चुगली भरना,
तान तोड़ना, झाल-मजीरा
सरेआम गाना जोगीड़ा।

---

1. तृणवेणु, ले० श्रीनिवास; प्र० श्री कविसप्रियंगव त्रिभुवन स्वास्थ्य केन्द्र, बुद्धमार्ग, पटना, प्र० सं० 1979, आकार डिमाई, पृ० सं० 152, पेपरबैक, मूल्य 50·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम शब्दों का व्यापार कर सकते हैं, प्राध्यापक, सम्पादक, विद्वान्, मनीषी, जानकार सब कहला सकते हैं, लेकिन एक जिज्ञासु पाठक की चेतना जब तक हममें नहीं होगी, 'तृणवेणु' को हम न तो ग्रहण कर सकते हैं और न ही उसके प्रति न्याय।

डॉ० श्रीनिवास ने साहस ही नहीं, दुःसाहस दिखलाया है, जो उनके जीवन का क्रम है। एक मर्यादित व्यक्तित्व के साथ साथ वे तरल और सरल हृदय रखते हैं, जो अनुभूतिजन्य भले हो, परन्तु भावुक नहीं है। ठोस बिन्दुओं अथवा वैज्ञानिक धरती पर 'तृणवेणु' की नींव हैं, जिसमें दर्शन, विज्ञान, परा अपरा, रूप, रस, गन्ध एवं काव्य मर्मज्ञता सब कुछ है।

समय बोध, चिन्तन, वस्तुपरकता, अस्मिता तथा प्रतीक-सत्य आज की कविता से लुप्त होते जा रहे हैं, आज कविता में कोई शास्त्रीय विवेचन करने बैठता है, कोई बाल की खाल निकालने, तो कोई अपनी बौद्धिकता से जर्जरता को और भी उद्वेलित करने का प्रयास करता है। 'तृणवेणु' में केवल सत्य की प्रतीति की अभिव्यक्ति है, जो कविता के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

'तृणवेणु' के कवि ने अपने आपको वाक्यपदीय या काव्यालंकार के सहारे नहीं खड़ा किया, वरन् ताड़ या खजूर या नारियल के समान स्वयं तन कर खड़ा हो गया—जिसे खड़ा होना हो, आये सहारा ले ले, कमर सीधी कर ले, लेकिन छतनार पत्तों की कामना न करे●●

सुलगते पसीने[1]

वैद्यनाथ प्रसाद

मार्क्सवादी वैचारिक भावना से अनुशासित दो कवियों, नचिकेता और शान्ति सुमन, के जनवादी नवगीतों के इस संग्रह में इक्यावन गीत हैं। दोनों कवियों ने दो वक्तव्य दिये हैं जिनमें जनवादी गीतों की विशिष्टता को उजागर किया गया है। नचिकेता के वक्तव्य में 1950 के आस पास जन्मे गैर-जनवादी आधुनिकता-बोध के प्रवाह में लिखे गये गीतों तथा 'जनसाधारण की सतत संघर्षधर्मी जिजीविषा, इच्छा, आकांक्षा, हर्षोल्लास और शोषण-उत्पीड़न के खिलाफ उभरती परिवर्त्तनकामी चेतना' को वाणी देने वाले गीतों में अन्तर को बतलाया गया है। नचिकेता ने जनवादी गीतों की रचना-प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया है। ये गीत एक राजनीतिक मतवाद के पोषक हैं, और इसकी सगर्व घोषणा नचिकेता इन पंक्तियों में करते हैं—'हमें जनवादी संघर्ष की पक्षधर राजनीति से सर्वथा लैस और उसके प्रति पूर्ण निष्ठावान रहने के लिए कृत-संकल्प होना है।'

शान्ति सुमन ने भी अपने वक्तव्य में परिवर्तनकामी रचनाधर्मिता के नये तेवरों की व्याख्या की है।

ये वक्तव्य कवियों की जागरूक चेतना और समृद्ध भाषा के परिचायक हैं।

---

1. सुलगते पसीने, ले० नचिकेता तथा शान्ति सुमन, प्र० बीज प्रकाशन, 292, आर. एफ. लोहियानगर, पटना, प्र० सं० 1979, आकार डिमाई, पृ० सं० 72, पेपरबैक, मूल्य 8·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नचिकेता के कुछ गीतों में कविता और नारेबाजी की सीमारेखा बहुत क्षीण है और कहीं कहीं तो दिखाई ही नहीं देती। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं : 'सत्ताधारी के घर में / अब न मनेगी दीवाली / देती है सन्देश हमें / उगते सूरज की लाली / तूफानों ने ही आखिर / दिया हमें फिर आमन्त्रण।' शान्ति सुमन कहती हैं—'कच्चे गीतों से अच्छा है / नारा एक लिखो।' नारेबाजी का एक और उदाहरण है—'पाँव की बेड़ी कटेगी / फिर नयी दुनिया रचेगी / बढ़ रहे जुल्मोसितम पर /रण बनेंगे।'

कवियों द्वारा प्रयुक्त भाषा में रवानी है। कुछ विम्बों में ताजगी और अनछुआ सौन्दर्य है। शान्ति सुमन की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—'यह भी हुआ भला / कथरी ओढ़े तालमखाने / चुनती शकुन्तला।' नचिकेता की निम्नलिखित पंक्तियों में कथ्य का नया तेवर है—'लो सुबहें फिर हुईं नीलाम/ अन्धों की गूँगी / परिपाटी से / हवा नजरबन्द / हुई घाटी में / कानों में चुभता कुहराम।'

यों इन जनवादी गीतों को आम जनता पढ़ तो नहीं सकती, गायक गाकर जनता को सुना सकते हैं। यदि ये गीत जन-भाषा अर्थात् बोली में होते तो शायद **अधिक मुखर** और अर्थवान होते●●

एक वृत्त के चारो ओर[1]

वैद्यनाथ प्रसाद

'एक वृत्त के चारों ओर' शान्ति जैन की 66 छोटी कविताओं का संग्रह है। कवयित्री ने इसी नाम की कविता में कहा है—'एक वृत्त है / जिसके चारो ओर / मौत और जिन्दगी / दिन और रात की तरह घूम रही है।'

संग्रह के सारे गीत मौत और जिन्दगी, व्यथा और करुणा, आशा और विश्वास के घेरे में घूमते हैं। इस दृष्टि से कवयित्री का अनुभव-संसार बहुत विस्तृत है। उसके कुछ गीतों में स्वानुभूत पीड़ा का वर्णन है, और कुछ में समाज द्वारा अनुभूत वेदना की अभिव्यक्ति है। 'अहसासों के रंग' नाम की कविता में कहा गया है—'सूने रेगिस्तान में / सूखती हुई / पानी की एक बूँद की तरह / मैं अकेली हूँ।' इसी मनःस्थिति की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में होती है—'दो कदम चलने के बाद / आज का हर आदमी / अकेला है।' 'ढलता सूरज' में कवयित्री ने कहा है—'डूबते सूरज की अन्तिम लौ / और, साँझ की साँवली बाहों के / दो पाटों के बीच / मैं अनाज के एक दाने-सी / पिस गयी हूँ।' कवयित्री को किन्तु घुटन और सन्त्रास के घेरे में जीना अभीष्ट नहीं। उसकी बहुत सी कविताओं में आस्था और विश्वास के स्वर हैं। 'अपनी मृत्यु' की निम्नलिखित पंक्तियों में यह स्वर मुखर है—'एक जीवन की समाप्ति के बाद / तुम्हारी वेदना के गर्भ से / मुझे मिलता है एक निराकार जन्म / जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती।' संग्रह की पहली कविता की अन्तिम पंक्तियाँ हैं—'बुद्ध-चरण में / श्रद्धा के दो फूल चढ़ा

---

1. एक वृत्त के चारो ओर, ले० शान्ति जैन; प्र० शान्ति प्रकाशन, रस्तोगी भवन, कदमकुआँ, पटना-1; प्र० सं० 1978, आकार डिमाई, पृ० सं० 70, पेपरबैक, मूल्य 5·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लें / ताकि हृदय के लक्ष्य-क्षितिज पर / पुनः एक दीपक जल जाय।' 'अपराजित : अजेय' में कवयित्री का कथन है—'साधना की कठिन राह चल कर / साध्य मिलता है……दुश्मन के खेमे में / बन्द रह कर भी / वह अपराजित / अजेय होता है।'

काव्य भाषा भी अनुभवों को रूपायित करती है। एक तरफ 'मेघ-केशदल-मध्य / तड़ित ज्योतिलेखा-सी / गौतम की साधना / आँधियों से टकरायी' जैसी संस्कृतगर्भित शब्दावली है, दूसरी ओर बिना लाग-लपेट की कही गई इन पंक्तियों में सहजता है—'अँधियारा छत से उतरने लगा है / साँझ और रात की मटियाली में / नीम के हरे पत्ते / स्याह हो काँपने लगे हैं।'

फिर भी ये कविताएँ उपलब्धि की नहीं, सम्भावनाओं की कविताएँ हैं। पुस्तक के उत्तरार्द्ध की कविताओं में मीरा का कई बार उल्लेख हुआ है। कवयित्री की चेतना में मीरा का बिम्ब गड़-सा गया लगता है। मीरा की कविताओं में अनुभूति की तीव्रता के साथ आवेग को बाँधे रहने की साधना भी है। कवयित्री को साधना के नये क्षितिजों का उद्घाटन करना है ●●

मुट्ठी बन्द रहस्य[1]

रणजीत कुमार साहा

सुकुमार और मसृण भाव के प्रौढ़ कवि श्री नरेन्द्र शर्मा पिछले चार दशकों से काव्य-प्रणयन करते रहे हैं और काव्य—विशेष कर गीत-कविता—के क्षेत्र में उनका अवदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। दुर्भाग्य से उनकी काव्य कृतियों का समुचित मूल्यांकन एवं सम्यक् विवेचन नहीं हुआ है। प्रस्तुत कृति में संकलित उनकी कतिपय कविताएँ उनकी अभिनव सर्जनशीलता का परिचय देती हैं और छायावाद-रहस्यवाद के अलावा आत्मवाद के ऐतिहासिक सन्दर्भ में अपनी मौलिकता प्रमाणित करती हैं।

इस संकलन में कवि की पैंतालीस कविताएँ संगृहीत हैं। छायावादी मानसिकता और उसके स्वच्छन्द ऊहापोह और रहस्यवाद के कृत्रिम गुंजलक से अलग कवि ने अपनी रचनाओं को विशिष्ट आयाम प्रदान किया है। आज की कविता जिधर वह चली है, उससे कवि का विरोध नहीं, लेकिन काव्य-सर्जन के ब्याज से भारतीय मनीषा या उसके परिपूर्ण औपनिषदिक दर्शन-चिन्तन का कवि ने विशेष अनुगायन किया है। इस आग्रह के कारण प्रस्तुत कृति का अधिकांश आध्यात्मिक सन्दर्भ में ही विवेच्य हो सकता है। भारतीय दार्शनिक चेतना का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन अद्वैत दर्शन है और यहाँ के ऋषि, मुनि, मीमांसक और दार्शनिक प्रकारान्तर से इसकी व्याख्या करते रहे हैं। इसकी समग्रता को कवि ने आत्मस्थ किया है और शब्द-पुष्प-नैवेद्य से उसकी स्तुति, संस्तुति और संवर्द्धना की है। औपनिषदिक परम्परा में अपनी आस्था व्यक्त करते हुए भी कविता में कवि की प्रपत्ति या समर्पण का स्वर ही मुखरित है—

---

1. मुट्ठी बन्द रहस्य, ले० नरेन्द्र शर्मा, प्र० राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र० सं० 1979, आकार डिमाई, पृ० सं० 79, सजिल्द, मूल्य 12·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं शून्य गगन, सच्चिदानन्द शिव का आराधक हूँ।
निर्गुण, जिसमें गुण निहित सभी, मैं उसका साधक हूँ ('सूनापन')

संकलन की लगभग सभी कविताएँ अपने आम-परमात्म वृत्त में स्थूल से लेकर सूक्ष्म और शून्य तक की यात्रा करती हैं। 'शून्य वन्दना' कविता के द्वारा शून्य की भावपरिधि को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है—

'शून्य का मौन मन्त्र का मन्त्र, शून्य निस्पन्दन तन्त्र प्रसार !
शून्य भौतिक सम्भव भव यन्त्र, शून्य से ही विचार व्यापार !
शून्य अवकाश, शून्य आकाश, शून्य ही शब्द छन्द संहिता !

शब्दों के चयन और समेकन पर कवि का असाधारण अधिकार है। भाव एवं विषय के अनुरूप ही वह संयोजित होते चले गये हैं। इन कविताओं की संरचना या उसके शब्द-विन्यास पर पन्त का और भाव-न्यास पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पर पन्त जी की परवर्ती कविताएँ जहाँ विचार प्रधान होती गयीं, शर्मा जी की कविताओं का मूल स्वर गीत-धर्मा प्रकृति के भाव-तारल्य में ही मुखरित होता रहा। अव्यक्त रूप-निरूपण विषयक कविताएँ अपनी संश्लिष्टता में दुर्वह और संरचना में जटिल होते हुए भी दुरूह या अग्राह्य प्रतीत नहीं होतीं; साथ ही, ऐसे सहृदय और प्रबुद्ध पाठक की माँग करती हैं, जो भारतीय दर्शन की समृद्ध परम्परा से परिचित हैं।

प्रकृति चित्रों या बिम्बों की दृष्टि से 'मुट्ठी बन्द रहस्य' की बिम्ब योजना दुर्लभ है। कवि ने अपनी भूमिका में लिखा है—'न मैं ज्ञानी होने का दावा कर रहा हूँ, न शक्तिशाली होने का। मैं ज्ञानी नहीं हूँ कि जीवन के 'मुट्ठीबन्द रहस्य' को मुट्ठी खुले बिना ही जान सकूँ और न मैं शक्तिशाली हूँ कि रहस्य को बन्द रखनेवाली मुट्ठी को बरबस खुलवा सकूँ।'

अपने स्वभाव, निवेदन और संकल्प वृत्त में विचार, दर्शन, अध्यात्म और समर्पण-संस्तुति से संयुक्त होती हुई भी संकलन की कविताएँ कविता होने की आवश्यक शर्त्तें पूरी करती हैं। कवि का सत्य अपने वक्तव्य में जीवन का सत्य है। वह पाठक को किसी द्वन्द्व वृत्त या त्रिकोण अथवा आयत में नहीं बाँधता, उसे तरल रेखा की तरह मुक्त रखता है; भौतिक या जागतिक प्रपंचों की विडम्बना से ग्रस्त मानव को आध्यात्मिक या रहस्यपरक गुंजलक से त्रस्त नहीं करता, अपितु उसके अन्तर्मन और अनन्त आकाश और अवकाश को उससे भी परे ले जाता है। प्रकृति से बद्ध और मुक्त परानिर्मातृ शक्ति और उसकी अविभाज्य सत्ता का रहस्य और उसका एकांश ही कवि की बन्द मुट्ठी में है, जिसे कवि अपनी जिज्ञासा के द्वारा हस्तामलकवत् प्राप्त करना चाहता है। लेकिन इससे कवि के उस वक्तव्य का भी खंडन हो गया है, जिसमें उन्होंने स्वीकारा है—"शिशुता की भाँति आज की कविता में भी, सच्चाई ही उसकी सर्वोपरि गुणवत्ता होनी चाहिए।" (निवेदन से) लेकिन शर्मा जी ने अपनी बालसुलभ जिज्ञासा या सरलता से जिस गहन और प्रौढ़ सत्य या साक्षात्कार को निबद्ध करना चाहा है, वह सुधी और प्रौढ़ पाठक की माँग करता है। वस्तुतः कविता या कवि की सत्य की ओर से की गयी हर यात्रा अन्तहीन अभियान-ज्ञाप्ति मात्र है●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कच्चे घर के लिए : क्रान्तिकारी कल्पना का अबोध सामान्यीकरण[1]

परमानन्द श्रीवास्तव

राजकुमार कुम्भज युवा पीढ़ी के कवियों में एक चर्चित कवि हैं—सब तरह की छोटी, बड़ी, विचारधारा प्रधान और गैर-प्रतिबद्ध स्वतन्त्र पत्रिकाओं में लगातार उनकी कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। अज्ञेय ने 'चौथा सप्तक' के कवियों में स्थान देकर उन्हें एक तरह की स्वीकृति या मान्यता भी दी है, इसलिए उनके एक मुकम्मल संग्रह 'कच्चे घर के लिए' की ओर आज की कविता के पाठकों का ध्यान जाना स्वाभाविक है। ऐसे कवि को स्वयं अपने कविकर्म या काव्यानुशासन का अन्तःपरीक्षण करना चाहिए और सबसे पहले अपने निकट के, अपनी पसन्द के समकालीनों और पूर्ववर्तियों के प्रभाव से बचना चाहिए। यह सम्भव है कि कोई कल्पना या कल्पना का बिम्ब ठीक उनके यहाँ वैसे ही आए जैसे किसी दूसरे के यहाँ—लेकिन पूरी कविता के ढाँचे को तो अनुकरण-ग्रस्त नहीं होना चाहिए। दूसरा खतरा कुम्भज के सामने काल्पनिक सरलीकरण या सामान्यीकरण का है—जंगल, पेड़, नदी, मैदान, हवा, आकाश कविता में सहज लगाव से आएँ—वे अनुभव के विस्तार या प्रसार में सहायक हो सकते हैं पर इनके आत्यन्तिक शाब्दिक प्रयोग से प्रकृति और मनुष्य के रिश्तों का भी सामान्यीकरण ही हाथ लगता है—कविता में इनका होना कोई गूँज नहीं पैदा करता। बच्चा उनके यहाँ बार बार आता है और कविता में वह अपनी उपस्थिति से कुछ नया घटित नहीं कर पाता—एक कृत्रिम वयस्क सोच अपने पूरे तर्क से उस पर हावी रहती है और अटपटापन भी किसी अबोध दार्शनिक सामान्यीकरण में गड्डमड्ड होकर अपने काव्यात्मक प्रभाव को एकाग्र नहीं रख पाता। (अन्यथा अटपटापन कुम्भज की कविता की ऐसी जमीन है जिसके साक्षात् से नयी सम्भावनाएँ उभरने लगती हैं !) पहली ही कविता 'बच्चे की मुट्ठी में' इच्छाप्रेरित सरलीकरण का सपाट नमूना है—

वह किसी भी सन्धि-पत्र पर
हस्ताक्षर करने में / सहायक नहीं बनेगा
भीतर से खिड़की तोड़ेगा / और / बाहर से हवा

'भाषा' और 'कविकर्म', 'भविष्य' और 'वर्तमान', 'सुख' और 'दुख' को लेकर सामान्यीकरणों की भरमार है कुम्भज की कविता में। कवि खुद नहीं जानता कि कहाँ से उसके संस्कारगत अन्तर्विरोध उसकी कविता में दाखिल हो गये हैं। उन्हीं के चलते कुम्भज जितनी ही आग की चर्चा करते हैं, कविताएँ उतनी ही तापहीन या प्रभावहीन होती जाती हैं। 'कविता की पिस्तौल' और 'भाषा का भूकम्प' और 'बन्दूक जैसे छूटते शब्द'—जैसे ढेरों प्रयोग कुछ नया करने की कोशिश में हाँफते, लथपथ निकल जाते हैं—उनसे कविता तो दूर, खास बात भी नहीं बनती। 'सुख' 'दुख' को सामान्यीकरणों में जैसे कविवर सुमित्रानन्दन पन्त निबटा देते हैं, कुम्भज भी उन्हें वैसे ही निबटा देते हैं :

---

1. कच्चे घर के लिए, ले० राजकुमार कुम्भज, प्र० मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, ई 135/1, रवीन्द्र मार्ग, भोपाल, प्र० सं० 1980 आकार डिमाई, पृ० सं० 100, सजिल्द, मूल्य 12·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यों / एक ही सिक्के के दो पहलू हैं
सुख और दुःख / दोनों ही / जनाबे दलबदलू हैं
कब, कौन कहाँ, आ जाए पता नहीं ?

अतिरंजना का मोह, रूपकों का आकर्षण कुम्भज के यहाँ खूब दिखाई देता है। यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हम कुम्भज की कविता के दोषों को बढ़ाचढ़ा कर देखना या दिखाना चाहते हैं—सवाल गुणदोष के विवेचन का नहीं है—एक युवा समकालीन कवि की कविता की प्रकृति और संरचना में व्याप्त किसी बुनियादी गड़बड़ी को पहचानने, लक्ष्य करने, विश्लेषित करने का है जिसका अध्ययन खुद कवि के काम की चीज है।

कुम्भज के इस संग्रह की (सम्भवतः) प्रकाशकीय विज्ञाप्ति में कहा गया है : "उन्होंने क्रान्तिकारी कविताएँ लिख कर प्रतिबद्ध रचनाकारों का और निजी अनुभूतियों की विशिष्ट कविताएँ लिख कर जगदीश गुप्त और सच्चिदानन्द वात्स्यापन 'अज्ञेय' जैसे संवेदनशील कलामर्मज्ञों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया।" कुम्भज की कविता की प्रकृति और संरचना में जो गड़बड़ी है, जो बुनियादी घपला है, उसकी व्याख्या इसी विज्ञप्ति में मौजूद है। कुम्भज को यह सवाल अपने से पूछना चाहिए कि वे कविताएँ लिखते हैं या किसी प्रतिबद्ध क्रान्तिकारी या किसी जगदीश गुप्त या किसी अज्ञेय के लिए कविताएँ लिखते हैं। इस वक्तव्य में अगर उनकी सहमति है तो जरूर उनके यहाँ यह विभाजन-सेंसर काम करता है—फिर क्या 'निजी' और क्या 'अनुभूति' के लिए शेष रहता है। अक्सर ऐसे कवि स्वचालित लेखन की ओर उन्मुख हो जाते हैं और फार्मूलों से कविताएँ बुनते दिखाई देते हैं।

जो बातें ऊपर संकेत के रूप में कही गयी हैं उन्हें उदाहरणों से पुष्ट करना जरूरी नहीं। उदाहरण सहज ही हर पन्ने पर दिख जायेंगे। कुम्भज की कविता में अगर कोई सम्भावना है तो वह उसी सहज अटपटेपन में है जो कहीं कहीं काव्यात्मक सार्थकता उपलब्ध कर सका है। 'आज की वर्षा' कविता में यह अटपटापन कविता के काम की चीज है :

सचमुच / आज की वर्षा
कमरे की दीवारों पर लगे / चित्र
अथवा / मन में / भागदौड़ करती इच्छा
या फिर / आकाश / रेल यात्रा में
कितनी निकटता हो गयी है

कुम्भज ने कविकर्म के बारे में अक्सर कविताओं में सोचना चाहा है—'भाषा की तलाश करें फिर / तो कविता का रास्ता खुला रखें / इसी रास्ते आएगी / वह / भाषा / घर की दीवारें भी बोलेंगी / और / आँखों के पक्ष में'—× ×'शब्द के भीतर / उत्पन्न होते हुए / शब्द / जैसे / माँ और बच्चे / एक दूसरे में'— × ×'मैं / कुछ अक्षर जोड़ कर एक शब्द बनाता हूँ / फिर वह शब्द तोड़ कर / एक अर्थ जगाता हूँ।' पर इस सोच के सहारे वह सिर्फ अपनी कविता का सामान्यीकृत मुहावरा दोहराते जान पड़ते हैं :

मातम पर रोने में
और / बच्चे का जन्म होने में /
बड़ा फर्क है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस कोटि के सामान्यीकरणों में भाषा और कविता के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता। कुम्भज उन कवियों में हैं जो हमेशा बहुत जल्दी में होते हैं—हर क्षण, हर घटना, हर प्रसंग को कविता में ढालते हुए—जिनके पास अपनी विचारधारा और अपने कलात्मक संगठन को जाँचने का, उनकी थाह लेने का धीरज नहीं होता—जो अपनी ही चालाकी से अपनी कविता का न्यूनतम मर्म भी गँवा बैठते हैं। उनकी पंक्तियाँ उन्हीं की कविता पर सटीक टिप्पणी हैं : 'बन्दूक / जैसे छूट रहे हैं शब्द / शब्द पर चढ़ता जाता है / हमलावर / हमलावर / जैसे मैं स्वयं हो रहा हूँ'।' कुम्भज ऐसी जगह खड़े हैं जहाँ सबसे अधिक आत्मपरीक्षण की जरूरत होती है। वैचारिक घपला भी कविकर्म के लिए खतरनाक चीज है●●

अपनी केवल धार[1]

अपूर्वानन्द

'अपनी केवल धार' अरुण कमल का पहला कविता-संग्रह है जिसमें उनकी तिरपन कविताएँ संगृहीत हैं। ये कविताएँ अलग अलग किस्म की कविताएँ हैं, पर हर कविता में आदमी मौजूद है, किसी न किसी तरह से। पुस्तक के ब्लर्ब में कहा गया है कि अरुण कमल की 'बड़ी विशेषता यह है कि वे आदमी को प्यार करते हैं।' आदमी के प्रति इस प्यार का ही नतीजा है उनकी प्रत्येक कविता में उसकी मौजूदगी। पर यह मौजूदगी जबर्दस्ती की नहीं है। बाग-बगीचों में, जंगलों में, प्रकृति में मनुष्य जिस तरह स्वाभाविक रूप से रहता है, वैसे ही उनकी कविताओं में। 'आदमी को प्यार करने' को अरुण कमल 'आदमी' होने की पहली शर्त मानते हैं। वे लिखते हैं : 'जो आदमी को प्यार नहीं करते / उनकी कोई गंगा नहीं / कोई मातृभूमि नहीं / कोई अपना तारा नहीं।' (**'गंगा को प्यार'**, पृ० 57) इसलिए मनुष्य के खिलाफ काम करने वाली ताकतों के प्रति उनकी कविताओं में तीव्र घृणा भरी है। वे उन पर वार करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेते हैं। **'ईर्ष्या'** कविता में उन्होंने अमरीका के न्यूट्रॉन बम बनाने के फैसले पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उस पर तीखा व्यंग्य किया है। जो शक्तियाँ मनुष्य की कीमत 'ऐशट्रे' से भी कम लगाती हैं, जो ऐसे उपाय तलाशती हैं, जिनके सहारे केवल मनुष्य को नष्ट करके बाकी सब बचा लिया जाए, उनकी कविताएँ उनके खिलाफ खड़ी हैं। आदमी के महत्त्व को कम करके देखने वाली हर शक्ति, हर प्रवृत्ति का विरोध उनकी कविताओं में है। भारत में ऐसे समाचार सुने गये हैं कि खून से किसी बड़े नेता का चित्र बनाया जाएगा या खून से किसी बड़े नेता को तौला जाएगा। यह सब कुछ उसी प्रवृत्ति के तहत होता है जिसमें मनुष्य की कीमत, उसके खून की कीमत, बस एक नेता के अहम् की तुष्टि से लगायी जाती है। 'अपील' कविता फिर उसी व्यंग्य की पैनी धार की कविता है।

अरुण कमल की कविताओं का व्यंग्य एक गहरी पीड़ा से जनमा है। यह आजादी के तीस साल बाद भी देश की अधिसंख्यक जनता के बद से बदतर हालत में पहुँचते जाने की पीड़ा है। श्रमिक जनता के श्रम पर जीने वाले परजीवियों के अत्याचार भीषण से भीषणतर होते

---

1. अपनी केवल धार, ले० अरुण कमल, प्र० वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमलानगर, दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 80, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जा रहे हैं। इस अमानुषिक अत्याचार का एक चित्र उन्होंने **'असंवैधानिक मौत'** में खींचा है। पूँजीवाद में जीवन-स्तर आम तौर पर सामन्तवाद के मुकाबले ऊपर उठता है, पर शोषण के तरीके और भी बारीक, और भी घुमावदार हो जाते हैं। व्यवस्था के अलमबरदार लोकतन्त्र और समाजवाद की दुहाई तो देते हैं, पर असल स्थिति यह है; "यह कितनी अजीब बात है / कि आदमी पीपल के सूखे पत्ते की तरह / लोकतन्त्र और समाजवाद / दो पन्नों के बीच सुरक्षित है।" आदमी की भलाई की बातें इस व्यवस्था के लोग करते हैं लेकिन असली समस्याओं को सुलझाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। इसलिए इनकी सरकार आदिवासियों के गाँवों में बिजली तो लगवाती है, पर उनके लिए पहले शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करती, जिससे वे बिजली का सही उपयोग कर सकें। (**'तमसो मा ज्योतिर्गमय'**) ऐसे में जनता के पक्षधर लोगों की स्थिति और भी संकटपूर्ण हो उठी है। जनता के खिलाफ चल रहे षड्यन्त्रों के ऊपर पड़े इन छोटे-छोटे सुधारों के पर्दे को उठाना उन्हीं का काम है। अरुण कमल इसका जिम्मा लेने वाले लोगों में से हैं, ऐसा उनकी कविताओं से स्पष्ट होता है। उनकी कविताओं में निम्नवर्ग और निम्नमध्य वर्ग के जीवन के कई चित्र मौजूद हैं। ये चित्र इन वर्गों के भयानक स्थिति में फँसे होने का प्रमाण हैं। कैसी विडम्बना है कि 'दुनिया की सारी गन्दगी के बीच / दुनिया की सारी खुशबू / रचते हैं हाथ।' (**खुशबू रचते हैं हाथ'**, पृ० 74) इस कविता को पढ़ते समय आँखों के आगे वह मुहल्ला मूर्त्त हो उठता है, जिसके अन्दर कूड़ा-करकट और नालों की भयंकर बदबू है और जिनके बीच रह कर झोपड़ियों में श्रमिक लोग मेहनत से वे अगरबत्तियाँ तैयार करते हैं, जो साफ-सुथरे लोगों के घरों को खुशबू प्रदान करती हैं। अरुण कमल वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के इस भीषण अन्तर्विरोध पर से पर्दा हटाते हैं।

समाज के सबसे निचले आर्थिक तबके से सटा ही एक और वर्ग है : निम्नमध्यवर्ग। इसके लोग भी अपनी, अपने परिवार की, कीमत पर दूसरों की सेवा करने को मजबूर हैं। इनमें वह मास्टर भी है जो स्कूल से रिटायर होने के बाद जब एक दिन अपने बेटे से बात करता है, तो पाता है कि वह कुछ भी नहीं जानता। इसका क्या कारण है?—'मैं एक रिटायर्ड स्कूल मास्टर / जो सुबह से शाम तक घूमता है यहाँ से / वहाँ / इस उस के बेटे बेटियों को ट्यूशनें पढ़ाता / बैठता कैसे थोड़ी भी देर खुद अपने बेटे के पास / जब घर से निकलता, तुम सोये होते / जब लौटता, तुम सोये होते।' (**'मुक्ति'**, पृ० 34) यह कैसी भीषण स्थिति है। लेकिन अरुण कमल गला फाड़ फाड़कर इस दुख के बारे में नहीं चिल्लाते। इसलिए उनकी ऐसी कविताएँ वाचाल नहीं हैं। ऐसी कविताएँ लिखते वक्त एक खतरा बराबर बना रहता है कि कवि अपनी ओर से वक्तव्य दे और दोषी पर उँगली रखने की जल्दबाजी करे। कविता, इस तरह, बहुत आसानी से सपाट हो जा सकती है। पर अरुण कमल अपनी ऐसी कविताओं को इस खतरे से बराबर बचा ले जाते हैं, इसीलिए उनकी हर पंक्ति उस दुःख में डूबी हुई जान पड़ती है जिसके बारे में लिखा गया है। यह शौकिया पाला गया दुःख नहीं है, कवि उस जीवन चक्र में शामिल है, जिसकी बात वह कर रहा है। इसलिए उसकी कविताओं में बहुत छोटी छोटी चीजें सर उठाती दीखती हैं। घर-परिवार की छोटी छोटी बातों को वे अपनी कविताओं में जगह देते हैं जो यों तो बहुत कम महत्त्व की जान पड़ती हैं, पर जिन बातों को लेकर ही गरीबी का यह दुष्चक्र पूरा होता है। उन्होंने एक परिवार में बच्ची के जन्म पर कविता लिखी है। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदय कचोटने वाला कष्ट है कि तुरत तुरत जनमी बच्ची, जिसे जहाँ सारे संसार का प्यार मिलना चाहिए था, वहाँ वह माँ-बाप से भी उपेक्षित है। अरुण कमल पूछते हैं, 'ओ नन्हीं बच्ची / क्या हुआ जो किसी ने तुम्हें चूमा तक नहीं / तुम्हारी माँ मुँह फेर रोती रही रात भर / और तुम्हारा पिता लौट गया बाहर ही बाहर / क्या हुआ जो तुम्हारी दादी ने बधावे नहीं दिये / और उनका यह आँगन पँवरियों की ढोलकों से / आबाद नहीं हुआ / तुम रोती रही, रोती रही / और किसी ने चूमा तक नहीं।" (**'एक नवजात बच्ची को प्यार'**, पृ० 44) इन पंक्तियों में उस परिवार का चित्र उभरा है जिसके लोग प्रतीक्षा बेटे की कर रहे थे, पर हुई बेटी। नवजात बच्ची की इस उपेक्षा का कष्ट अरुण कमल की इन पंक्तियों में आकर दिल झकझोर देता है। उनकी पंक्तियाँ, जिनका स्वर अत्यन्त धीमा है, एक तीव्र आक्रोश को जन्म देने में सफल हैं। यह आक्रोश उस पूरे ढाँचे के प्रति है जिसने उस बच्ची के माँ-बाप, दादा-दादी को उसका स्वागत करने से पीछे हटा लिया है : "जिस दादी ने जूठन खाकर ही गुजार दी जिन्दगी / जिस माँ ने पति की मार सही चुपचाप / और जिस पिता ने देखा है तिलक दहेज का क्रूर व्यापार / वे कैसे खुश होंगे।' (पृ० 44)

अरुण कमल बहुत सावधानी से शासक वर्ग की चाल देख रहे हैं। वे उसकी उस घबराहट को भी देख पा रहे हैं जो अपने ऊपर चारो तरफ से लगातार हो रहे आक्रमण के कारण उसमें पैदा हुई है। वह बदहवासी में आकर हास्यास्पद काम करता है। यहीं उनकी कलम अपना कमाल दिखाती है : 'चारों तरफ एलान हो गया / पुलिस तैनात हो गयी / बन्दूकों में गोलियाँ भरी रहेंगी / फौज को आगाह कर दिया गया / और दो बच्चे पकड़े गये / एक तीन साल का / एक छह महीने का / जुर्म ? / लड़का इतने जोर से दौड़ रहा था / कि धरती फटने का डर था / जुर्म ? / और वह बच्चा इतना हँसता क्यों था / बिना बात के ?" (**"बच्चा हँसता क्यों है,** पृ० 75) अरुण कमल शासक वर्ग की बदहवासी में की गयी हरकत का इस तरह चिथड़ा उड़ाते हैं। यह शासक वर्ग अपने विनाश के नजदीक पहुँच गया है। उसे पता है कि उसने क्या अपराध किये हैं, इसलिए उसे प्रतिकार, हमले, बदले का डर है। इस भय के कारण वह विक्षिप्त हो उठा है : "खतरा बढ़ रहा है / अब उन्हें साथ सोयी पत्नी के करवट बदलने से भी / डर लगता है / पत्ता हिलने से / बच्चों के हँसने से / अब अपनी साँस से डर लगता है।" (वही, पृ० 75) डर से पागल होकर यह शासकवर्ग अपने हक की माँग कर रहे लोगों पर लाठी चार्ज करवाता है, गोली चलवाता है। अब दुनिया को देखने के लिए उसके पास एक ही दूरबीन बच रही है : बन्दूक की नली। (**'शहंशाह मैकबैथ'**, पृ० 78) शासक वर्ग की इस क्रूरता के कारण हर रोज सैकड़ों लोग चारों तरफ मारे जाते हैं। कोई भूख से मरता है तो कोई इस शोषक व्यवस्था का विरोध करते हुए गोलियाँ खाकर। कुछ मौतें ऐसी होती हैं जिनका लेखा जोखा कोई नहीं रखता। पर वे भी इसी अमानुषिक शोषण के ताने बाने के कारण होती हैं। अरुण कमल एक ऐसी ही मौत का जिक्र (**'ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया'**) शीर्षक कविता में करते हैं। (पृ० 27)

अरुण कमल की कविताओं के पीछे उनका वस्तुवादी रवैया बराबर काम करता रहता है। अपने इस वस्तुपरक दृष्टिकोण के कारण वे समाज की हर चीज को उसकी सही जगह पर रखा देखते हैं, साथ ही उनकी नजर में वह जगह भी है जहाँ वह चीज रहनी चाहिए थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे इस व्यवस्था में सामाजिक सम्बन्धों की संश्लिष्टता को जानते हैं। पिछले दिनों और आजकल भी, मुख्य अन्तर्विरोध को उसकी जटिलता में न पकड़ पाने के कारण लोगों ने अपनी सुविधा के मुताबिक नकली अन्तर्विरोधों का आविष्कार किया। पुरुष स्त्रियों के बीच का अन्तर्विरोध, पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच का अन्तर्विरोध इसी साजिश और कमअक्ली का नतीजा है। अरुण कमल इस साजिश को पहचानते हैं और अपनी कविताओं में इन छद्म अन्तर्विरोधों का पर्दाफाश करते हैं। पुरानी पीढ़ी के प्रति, तभी तो, वे ऐसी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं : "तुम्हीं ने तो रोपा हमें / तुम्हारा ही रक्त तो अँकुर रहा / हमारी धमनियों में / तुम्हीं तो झाँक रहे हो / हमारे उस चेहरे में / मन की अधूरी इच्छाओं ने तुम्हें / दिलाया है हममें विश्वास।" ('अर्पण', पृ० 45) वे जानते हैं कि उनके और उनके पिता के दुःख एक ही हैं, उनके लक्ष्य एक ही हैं, इसलिए वे उनसे घृणा नहीं करके उनके साथ चलने की बात करते हैं। उन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था के आर्थिक आधार का बारीक अध्ययन किया है। उस आधार के निर्माण क्रम में पुरुष-स्त्री दोनों को एक सा मजदूर बनते देखा है। इसलिए वे कामगार औरत की व्यथा की ओर भी कलम मोड़ते हैं : "एक धुँधले से स्टेशन पर वह हमारे डब्बे में / चढ़ी / और भीड़ में खड़ी रही कुछ देर सीकड़ पकड़े / पाँव बदलती..." (डेली पैसेन्जर', पृ० 76) और आगे, "कि सहसा मेरे कन्धे से / लग गया / उस युवती का माथा / लगता है बहुत थकी थी / वह कामगार औरत/ काम से वापस लौट रही थी / एक डेली पैसेन्जर" (पृ० 77)। पुरुष स्त्री दोनों ही श्रम बेचने को मजबूर हैं। पूँजीवाद के प्रसार के साथ साथ पुरुष स्त्रियों के बीच के पुराने सामन्ती सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं और उनमें केवल शारीरिक बनावट का फर्क रह गया है।

अरुण कमल इन संश्लिष्ट सम्बन्धों वाली सामाजिक संरचना को आसानी से अपनी कविताओं में उतारते हैं। उनकी कविताएँ स्थितियों का बयान हैं। वे जानते हैं कि हालात इतने भयंकर, इतने मुश्किल हैं कि उनको सही तरीके से बतला देना ही पाठकों को उस शक्ति के विरुद्ध लड़ने को तैयार करेगा, जिसकी देन ये हालात हैं। वे करते केवल इतना हैं कि एक तरफ वे जीवन के मधुर चित्र अंकित करते हैं और दूसरी तरफ उन चेहरों को उघारते हैं जिन्होंने जीवन के माधुर्य को चूस लिया है। उनकी कविताओं में दिखाई देने वाला यह अन्तर्विरोध हमारे समाज का अन्तर्विरोध है।

अरुण कमल की कविताओं से स्पष्ट है कि रचना करते वक्त वे निरपेक्ष नहीं रहते। उनके आगे सारी दुनिया खड़ी रहती है, जो उन्हें अपना पक्ष घोषित करने को कहती है। इसीलिए वे अपनी बात साफ साफ कहते हैं। उनकी कविताएँ बहुत ठोस हैं। कहीं भी उन्होंने भाषा में कारीगरी का लोभ नहीं दिखाया है। वे घर परिवार की भाषा में ही कविता करते हैं और अलग से भाषा निर्माण करने का घमंड उनकी कविताओं में नहीं है। अरुण कमल उसी भाषा को लेकर कविता करते हैं जो जनता द्वारा बनायी गयी है। इसीलिए न तो अनावश्यक गढ़े गये मुहावरे उनके पास हैं, न छोटी बातों के लिए बड़े शब्द। लेकिन इस बात का यह अर्थ नहीं कि उनकी कविताओं में काव्य बिम्ब नहीं हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में सशक्त बिम्बों का सृजन किया है। सूर्योदय की बात करते हुए वे लिखते हैं : 'सूर्य को उगते हुए देखना / देखना अन्धकार की खुलती गिरह।' (**'एक रात घाट पर'**, पृ० 54) नई जनमी बच्ची के बारे में वे लिखते हैं : 'तुम्हारी यह देह बरगद के टूसे सी टहक रही है / केशों से भरा यह माथा कस्तूरी सा / फेंकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है सुगन्ध ।' (**'एक नवजात बच्ची को प्यार'**, पृ० 44) अरुण कमल की कविताओं में ऐसे सशक्त बिम्ब भरे पड़े हैं : "वह कोई दिन था मई के महीने का / जब वियतनाम सीढ़ियों पर बैठा / पोंछ रहा था / खून और घावों से पटा शरीर / कम्बोडिया जकड़ी सिकड़ियाँ खोलता / गृह प्रवेश की तैयारियों में व्यस्त था / और नीला आकाश ताल ताल में फेंक रहा था अपनी शाखें।" (मई का एक दिन, पृ० 18)

अरुण कमल के इस कविता-संग्रह में छन्दोबद्ध कविता नहीं के बराबर है। ऐसी कविता भी नहीं है जो लोगों की जुबान पर चढ़ कर चारों ओर फैल जाए। इसके कारण हैं। वे न तो ट्रेड यूनियन के मोर्चे पर सक्रिय हैं, न वे जन आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी लेते रहे हैं। पर इसका यह मतलब नहीं कि वे जनता के कवि नहीं हैं। कविता कला है और कठिन कला है। उसका आनन्द लेने के लिए एक न्यूनतम शिक्षा स्तर का होना आवश्यक है। अरुण कमल जैसे कवियों पर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे पढ़ते ही समझ में आने लायक कविता नहीं लिखते। पर जो 'ज्ञानात्मक आधार' उन्होंने पाया है, उस पर खड़े होकर वे पाठकों से एक निश्चित 'ज्ञानात्मक आधार' की माँग करें, यह स्वाभाविक ही है। फिर, पूँजीवादी संस्कृति की चौतरफा घुसपैठ का मुकाबला करते हुए सांस्कृतिक रुचि के परिष्कार का काम उन जैसे कवियों के कन्धे आ पड़ा है। इसलिए वे साहित्य में प्रगतिशील परम्परा को दृढ़ करने वाली भाषा का निर्माण भी करते हैं। उन्हीं की एक कविता **'धार'** की ये पंक्तियाँ उनके लेखन और उनकी भाषा के बारे में सब कुछ कह देती हैं : 'अपना क्या है इस जीवन में / सब तो लिया उधार / सारा लोहा उन लोगों का / अपनी केवल धार।' (पृ० 79)

अरुण कमल का यह संग्रह पाठकों को अधिकार देता है कि उनसे वे 'और' की माँग करें। वैसे, इस संग्रह को पढ़ना वैसा ही अच्छा है, वैसा ही सुखद, जैसा 'देखना अन्धकार की खुलती गिरह' ●●

शबरी[1]

नीरजा टंडन

इतिहास के उपेक्षित पात्रों को चारित्रिक औदात्य प्रदान करके उन्हें महत्त्व प्रदान करने वाले हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में 'शबरी' एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। उत्तर भारत की रामकथाओं में 'शबरी' राम की अनन्य सेविका के रूप में आयी है। वह कौन थी, किस स्थान या वंश की थी, इस विषय में इतिहास प्रायः मौन है। धनजंय अवस्थी ने 'शबरी' के जीवन के अनेक अनछुए प्रसंगों को दक्षिण भारत में प्रचलित 'शबरी' की जीवनगाथा के आधार पर अपनी अनूठी कल्पना से चित्रित करने का प्रयास किया है। यह प्रयास केवल 'शबरी' के जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करने तक ही सीमित नहीं है; अपितु आज के युग में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वर्गसंघर्ष और जातिसंघर्ष को दूर करने का भी प्रयास है।

---

1. शबरी, ले० धनंजय अवस्थी, प्र० स्मृति प्रकाशन, 124, शहरारा बाग, इलाहाबाद-3, प्र० सं० 1981, आकार डिमाई, पृ० सं० 112, सजिल्द, मूल्य 12'00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस खंड काव्य में 'शबरी' के कैशोर्य से लेकर राम के मिलन तक की कथा के साथ साथ सर्वहारा वर्ग की विसंगतियों, विडम्बनाओं, उनके जागरण का युग-यथार्थ से सम्पृक्त चित्रण है। ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित अन्त्यज भीलों के ग्रामाधिपति शवर की कन्या 'शवरी' विवाहोत्सव के अवसर पर 'अपने पालित छगलक' के वलि दिए जाने से आहत होकर दुःसह दुःख के आवेग में गृहत्याग कर रूढ़िग्रस्त, वर्णभेद संस्कारों से युक्त जनसमुदाय से अन्त्यज होने के कारण निरन्तर तिरस्कार पाती हुई वनवासिनी वनती है और कालान्तर में मतंग मुनि की आश्रिता—'मैं हूँ शवर पुत्री / शवरी अनाश्रिता / परित्यक्ता अग-जग से / भिल्लिनी उपेक्षिता × × × मुझको दें शरण प्राण।' (पृ० 64) गायत्री मन्त्र और सन्ध्योपासना की अपेक्षा मानवीय संवेदन को महत्त्व देने वाले मतंग मुनि शबरी को राम की उपासना के लिए प्रेरित करते हैं क्योंकि 'आएँगे राम यहीं / कुटिया में / उनकी ही कृपा विशेष / धो देगी क्लेश शेष / जीवन के / युग-युग के।' (पृ० 69) निर्मल, उदार मन और संयम, दृढ़निश्चय से युक्त अनन्य मन से पतितपावन, सत्य, सौन्दर्य और शील के सिन्धु राम का निरन्तर स्मरण करते हुए सेवा कार्य में दत्तचित्त शबरी को अनजाने ही आश्रम में आए हुए वितण्ड मुनि का कोपभाजन बन कर अभिशप्ता वनना पड़ता है-- 'आजीवन-/भोगती रहेगी व्यथा/तेरा यह कर्म दण्डनीय है।' (पृ० 78) यही नहीं, आश्रम के वटुक वृन्द और आश्रम की कन्याओं से भी धिक्कार ही शवरी को मिलता है। अपने लांछन से दुःखित शबरी अपनी व्यथा-कथा मतंग मुनि से कहती है और मतंग मुनि द्वारा राम-आगमन की चर्चा सुनकर उनकी प्रतीक्षा वृद्धावस्था तक करती है। अन्ततः राम का आगमन होता है और शवरी की सेवा भावना से विमुग्ध राम शवरी के द्वारा ही सरोवर के जल के पवित्र होने की योजना प्रस्तुत करते हैं, परिणामतः शबरी के जल में प्रवेश करते ही सरोवर का जल पवित्र और ग्राह्य हो जाता है।

आधुनिक बौद्धिक संस्कार के आग्रह से प्रस्तुत खंडकाव्य के चरित्रों, घटना प्रसंगों को प्रायः परिवर्तित नहीं किया गया है; नयी अर्थवत्ता और सन्दर्भ से सम्पृक्त करके इस कृति में कवि ने कतिपय सामाजिक विसंगतियों की ओर संकेत करके इन उनके मूल में वर्ण भेद को स्वीकार किया है और उनके प्रतिकार का समर्थन किया है। कवि शबरी के जीवन की यातना, संघर्ष आज के सर्वहारा वर्ग के द्वन्द्व और विसंगति को एक नये भावबोध से अभिव्यक्त करने में सक्षम है●●

प्रतिज्ञा[1]

सुरेन्द्र स्निग्ध

देवनन्दन 'विकल' का हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रवेश 'प्रतिज्ञा' नामक प्रबन्ध काव्य के साथ हो रहा है। प्रबन्ध स्थापत्य की रचनाएँ हर युग की शक्ति और सीमा को अपने ढंग से व्यक्त करती हैं। ऐसी रचनाओं में सबल कलाकार ही युग के तनावों, संघर्षों, द्वन्द्वों तथा अन्तर्विरोधों को मूर्त्त करने में सक्षम हो सकता है। 'विकल' की सीमा 'प्रतिज्ञा' में स्पष्ट है।

---

1. प्रतिज्ञा, ले० देवनन्दन विकल, प्र० नन्दन प्रकाशन, नन्दनामा, मुंगेर, प्र०सं० 1978, आकार डिमाई, पेपरबैक, मूल्य 5·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'प्रतिज्ञा' में महाभारत की वह प्रसिद्ध कथा है जिसे 'भीष्म-प्रतिज्ञा' के नाम से जानते हैं। प्रबन्धकार ने शान्तनु-योजनगन्धा के प्रेम प्रसंग को अपनी स्वतन्त्र-कल्पना से चित्रित किया है—'छायावादी' काव्य शैली में। यह प्रबन्ध काव्य मात्र 'कथा काव्य' बन कर रह गया है। यद्यपि प्रबन्ध काव्य में कथातत्त्व ज्यादा होता है और विवरणात्मक ब्योरों का क्रमिक सिलसिला भी काफी हद तक सुरक्षित रहता है तथापि वह मात्र 'कथा काव्य' नहीं होता—उसमें कथा का मिथिकल ढाँचा सावधानी से जीवन के नये अनुभवों को प्रस्तुत करता है। विकल जी प्राचीन मिथकों को नया अर्थ सन्दर्भ देने में पूरी तरह असफल रहे हैं। इसलिए यह कृति अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और ऐतिहासिक समस्याओं और निर्णयों को प्रतिष्ठित करने से दूर रह गयी है।

'प्रतिज्ञा' पढ़ने पर किसी भी पाठक के सामने जिन प्रबन्ध काव्यों की छवियाँ उभरती हैं—वे हैं, 'कामायनी', 'उर्वशी', 'रश्मिरथी' तथा 'कुरुक्षेत्र'। कई जगह तो इन प्रबन्ध काव्यों के महत्त्वपूर्ण अंशों का रूपान्तरण भर कर दिया गया है। कवि ने जगह जगह व्याकरण की भद्दी भूलें की हैं तथा मात्रा पूर्ति के लिए शब्दों के रूपों में मनमाना परिवर्तन कर दिया है। ऐसी भूलों के लिए कवि को माफ नहीं किया जा सकता है●●

कारागार[1]

महेशचन्द्र शर्मा

प्रस्तुत कृति ब्रिटिशकालीन जेल जीवन का आन्तरिक चित्र है। यह परतन्त्र भारत के दिनों एवं जेल-जीवन की याद दिलाती है। इसके कई अध्याय बड़े मर्मस्पर्शी हैं। 'खून के आँसू' शीर्षक अध्याय में तो जेल में बालकों पर बेंत पड़ने का इतना हृदय-बेधक वर्णन किया गया है कि पढ़ने सुनने वाले का दिल दहले बिना नहीं रहेगा।

साहित्यिक विधा की दृष्टि से इसे 'आत्मचरित' या 'आत्मकथा' की कोटि के अन्तर्गत रखना समीचीन होगा। वैसे, इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्व है। कृति में आद्योपान्त सरल-सुबोध भाषा का व्यवहार हुआ है। लेखिका का यह जेल-जीवन स्वयं का भोगा हुआ जीवन है। अतएव, इसमें अनुभव में प्रामाणिकता आ गयी है।

समीक्ष्य कृति जहां एक ओर स्वर्गीय ऊर्मिला शास्त्री के त्याग-भावना से ओत प्रोत एवं बलिदानी जीवन की तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करती है, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश शासन काल की जेलों में राजनैतिक सत्याग्रही कैदियों की अवस्था तथा उन पर होने वाले अत्याचारों की झलक भी देती है। इसी में कृति की रचनोद्देश्यता निहित है। इसी दृष्टि से यह पठनीय है●●

1, कारागार, ले० उर्मिला शास्त्री, प्र० आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वि० सं० 1980, आकार क्राउन, पृ०सं० 111, सजिल्द, मूल्य 15·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भीड़ से गुजरते हुए[1]

शत्रुघ्न

'भीड़ से गुजरते हुए' नवगीतों का संग्रह है। वैसे इस संग्रह में गीतों के साथ गजल और रुबाइयाँ भी हैं पर इनमें गीत का स्वर ही प्रधान है।

यह दर्द व्यक्तिगत नहीं, समष्टिगत है। प्रचलन के तौर पर मानव की पीड़ा को नहीं अंगीकार किया गया है। कवि ने किसी वाद के निर्देश पर भी आँसू बहा कर लोगों की सहानुभूति नहीं बटोरी है। उसने अपने संवेदनशील हृदय से मानवीय पीड़ा को गहराई से अनुभव किया है। इसीलिए इन गीतों में ताजगी, सहजता और प्रवाह है।

जैसे कोई सैनिक देश के लिए संघर्ष करते हुए अपने घर की याद करता है, उसी प्रकार गीतकार अँधेरे से जूझते हुए मेंहदी के पाँव को निहारता है। पर उसे स्मरण है कि वह आग का सफर तय कर रहा है। इसलिए कहता है—

तपती हुई दुपहरी है जिन्दगी हमारी,
इस धूप में तुम्हारा यह प्यार गुलमोहर है।

कवि ने वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को जोड़ दिया है। दोनों अलग अलग नहीं हैं। जीवन के संघर्ष में न प्रिया के प्यार को भूलना है और न प्रेम के आवेश में जीवन की पीड़ा को विस्मृत करना है। यह सन्तुलन श्लाघ्य है।

नीरज के गीतों में शोषण और पीड़ा का वर्णन है। पर अनुभूति की तरलता और अभिव्यक्ति की सहजता का अभाव प्रतीत होता है। कृष्ण कल्पित ने पूरी ईमानदारी से आज के जीवन में व्याप्त विषमता, विसंगति और संघर्ष को अपनी कविताओं का विषय बनाया है। उसकी अनुभूति की आकुलता मानो अपने आप प्रकट होने लगी है। इसीलिए वह भीड़ से गुजर कर भी अपनी अलग पहचान बनाता है :

प्रथम खंड में पीड़ित-पददलित मानव के दर्द को ताजे उपमानों, प्रतीकों तथा बिम्बों के द्वारा व्यक्त किया गया है। इन गीतों में मानव की पीड़ा तथा संघर्ष की सूत्रता है। पर ये कथागीत नहीं हैं। गीतकार आज के सम्पूर्ण जीवन से निराश होकर कहता है कि 'जीने की सब मान्यताएँ फिजूल हैं / बोते हैं अमलतास / उगते बबूल हैं।' सचमुच लोकतन्त्र, समाजवाद और मानववाद की सब मान्यताएँ व्यर्थ सी लगने लगी हैं। आम आदमी की हालत में कोई बदलाव नहीं आ रहा है। इसलिए लोग अपने जीवन के प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। यह एक भयानक स्थिति है। इसीलिए कवि कहता है कि हम इस धरती पर अखबार बिछा कर सो जाएँ। हम क्यों किसी के दुखदर्द में शामिल हों ! जैसे मध्ययुग में राजा राज्य करता था, वैसे ही आज के शासक। प्रजा की स्थिति यथावत् है। इसीलिए माटी के गाँव अँधियारे पीते आ रहे हैं। सब जगह सूनापन तैरता दिखायी पड़ रहा है।

---

1. भीड़ से गुजरते हुए, ले० कृष्ण कल्पित, प्र० राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 64, सजिल्द, मूल्य 12·50

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कवि ने जीवन की सम्पूर्ण आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगति-विषमता के जहरीले परिणाम को दिखाया है और एहसास कराया है। अपने एक गीत में 'जगनराम मोची' के जीवन को कवि ने चित्रित किया है। इस गीत में निराला की वह परम्परा दिखायी पड़ती है।

'जगनराम मोची ने / काट दिया नुक्कड़ पे / घिसे हुए जूते-सा दिन।'

कवि ने धूप के गीत में भी दर्द भरी जिन्दगी से ही धूप को उपमित किया है। इसमें वादग्रस्तता या फैशन की कृत्रिमता नहीं है। जीवन प्रकृति के साथ हो गया है और प्रकृति भी जीवन के निकट आ गयी है :

'खान के मजूरों सी थकी हुई धूप।
पीपल के गट्टे पर सुस्ताने बैठ गयी।'

अनुभूति की सच्चाई, राजस्थानी परिवेश की आत्मीय झलकियाँ, ताजे फूल से नये उपमान एवं बिम्ब तथा प्रवाहपूर्ण सरल भाषा तथा गीति शैली की लयात्मकता ने इस गीत संग्रह को भव्यता एवं प्रौढ़ता प्रदान की है।●●

धूप[1]

बैजनाथ राय

'धूप' सिन्धी कवयित्री फहमीदा रियाज की 36 कविताओं का हिन्दी रूपान्तर है। मन के अन्दर की दुनिया और बाहर की दुनिया से सम्बद्ध विषयों के बीच की विभाजक रेखा कवयित्री को स्वीकार नहीं है। वह देखती है कि उसके चारों ओर फैला हुआ निरर्थक संसार, व्यर्थ का गोरखधन्धा, आदमियों के बे-दिमाग और बे-रूह कारोबार, दूकान और दफ्तर, अखबारों में असम्बद्ध सुर्खियाँ, राजनीति की तिकड़में, फौजकशी और समझौते—इन बेसिर-पैर की बातों का उसकी रूह में उठते हुए भूचाल से कोई नाता नहीं। कवयित्री के अनुसार 'दौलत, अज़मत, शोहरत' का वायदा और आश्वासन प्रवंचना है, यह आदमी को केवल मूर्ख बनाने का सम्मोहन मन्त्र, भेंड़तन्त्र का महाजाल और शोषण तन्त्र का अमोघ अस्त्र है। निश्चय ही इनमें कवयित्री की जिन्दगी की अनुभूतियाँ बड़ी तल्खी के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। परन्तु कवयित्री के अकेलेपन का बोध किसी प्यास विशेष के न बुझने सम्बन्धित है—'क़ितना सन्नाटा है /बस इक नन्हें पल में / जीवन मुझको अपना पीला, सुता हुआ, थपड़ाय मुँह दिखलाता है / फिर छुप जाता है / और मैं रो देती हूँ / घर में, घर से बाहर, पल-पल हाय यह किनका साथ / घुट-घुट कर रह जाये/ कह नहीं पाये दिल की बात / यही तो दोजख है /तनहाई की दोजख।' कवयित्री का कुंठाग्रस्त जीवन दमित वासना का शिकार हुआ-सा प्रतीत होता है, यद्यपि उसने अपनी वासनापूर्ति के भी नग्न चित्र उकेरे हैं—'जाना, तेरी तंगतर हम आग़ोशी में/और मेरे गर्म बोसए लब में / चाहत में बदन के तुन्द टकराव से / जो शोल इश्क का भड़कता है /......वह शोला किस कदर फरोजा है।' फिर भी उसको तृप्ति नहीं होती। वह यायावरी और सैलानी जिन्दगी की भूखी है—'हर नारी के मन में छुपी हुई एक पुरानी अभिलाषा/ मनचाहे मनुष्य के साथ फिरें घूमें / बारिश में भीगें / सर्दी से

1. धूप, ले० फ़हमीदा रियाज़, प्र० राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्र० सं० 1979, आकार डिमाई, पृ०सं० 67, पेपरबैक, मूल्य 11·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काँपें / गर्मी झेले / मिट्टी से खेलें / मिट्टी को भी भेद बताएँ / नारी को शर्मीला कहने वालों को शरमाएँ / और सोचे अपनी कोख में पलने वाले जीव का नाम।' निश्चय ही 'तथाकथित' नारी-स्वातन्त्र्य की यह भावना वैवाहिक संस्कार और सामाजिकता को चुनौती देते हुए एक वहशी ज़िन्दगी का आमन्त्रण है।

कवयित्री का यह दावा सर्वथा निराधार है कि उसकी भाषा आम बोलचाल की हिन्दुस्तानी है, जिसमें तुलसी और कबीर ने कविताएँ लिखी हैं। 'धूप' की अधिकांश कविताएँ अरबी व फारसी के दुरूह शब्दों से बोझिल हैं, और प्रत्येक पंक्ति को समझने के लिए पाद-टिप्पणी पर आँख गड़ाए रखने के लिए मजबूर करती हैं●●

जमाने का कुतुबनुमा[1]

अशोक भाटिया

'जमाने का कुतुबनुमा' अम्बिका भारद्वाज की 94 कविताओं का संग्रह है। कवि ने 'लेखकीय' में इन कविताओं के विषय और उद्देश्य को स्पष्ट किया है—'इसमें विषमता, अभाव, भूख और इस तरह की अनेक समस्याओं का चित्रण है।···इस प्रयास द्वारा सर्वग्राह्यता लेखन का उद्देश्य रहा है।' संग्रह में इन विषयों के साथ कुछ प्रेमपरक कविताएँ भी हैं। वैसे आर्थिक और सामाजिक विषमता, खोखली सभ्यता तथा अभावग्रस्त और विवश व्यक्ति का चित्रण इसका मूल प्रतिपाद्य है। कविताएँ पढ़ कर स्पष्ट हो जाता है कि कवि की सामाजिक समझ बड़ी सतही है। चित्रित यथार्थ बड़ा सीमित और एकांगी होकर रह गया है। दूसरे, कवि अभी भावुकता से पीछा नहीं छुड़ा पाया। अतः जहाँ भी अन्याय या बर्बरता के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, वहाँ पाठक को भावुक बनाने का पूरा प्रयास हुआ है। कवि तनाव की अपेक्षा भावुकता को वाणी देने में तत्पर दिखायी देता है। अतः यथार्थ की पृष्ठभूमि और ईमानदार अभिव्यक्ति होने के बावजूद कविताएँ ढीली हैं।

अभिव्यक्ति के स्तर पर भी कविताएँ कमजोर पड़ती हैं। वर्णन और विवरण देने के कारण उनमें काव्यात्मक तत्त्व प्रायः शिथिल पड़ गये हैं। इसी कारण बिम्बों उपमानों और प्रतीकों का बहुत कम उपयोग हुआ है। कई स्थलों पर पंक्तियों में तालमेल नहीं है। जैसे—'फ़िल्म की बढ़ती छूट से / सिनेमा के पर्दे से / गुजरता हुआ / सभ्य घरों के / दीवार से / आकर चिपकते हैं।' (पृ० 37) संग्रह में कुछ कविताएँ विकास के संकेत देती हैं। इनमें अपेक्षाकृत सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। जैसे—

अर्थहीन शब्दों-सी / घूँघट काढ़े बढ़ रही शाम / टिमटिमाते तारों की / आवाज में रो रहा एक मासूम बच्चा···(पृ० 95)

कुल मिला कर यह एक सामान्य कोटि का संकलन है। इसमें कई स्तरों पर कच्चापन है। कवि को और गहरे धरातलों पर सोचता है, तभी अभिव्यक्ति में कसाव आ सकेगा●●

---

1. जमाने का कुतुबनुमा, ले० अम्बिका भारद्वाज, प्र० जयराज प्रकाशन, 8।1सी, डायमण्ड हार्बर रोड, कलकत्ता-27, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 112, सजिल्द, मूल्य 10·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्यासत्य[1]

मान्धाता राय

'सत्यासत्य' एक युगीन प्रबन्ध काव्य है जिसमें चिन्तन, भावधारा, समस्याओं के निरूपण एवं कथा के निर्वाह में कवि की नैतिक मूल्यों के प्रति गहरी निष्ठा व्यक्त हुई है। कवि शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्थावान है, यही कारण है कि इस कृति में यथार्थ पर आदर्श का पलरा भारी पड़ा है। समूचे वर्णन के पीछे कवि का निष्कर्ष है कि सृष्टि के आरम्भ काल से सद् और असद् प्रवृत्तियों के बीच संघर्ष चला आ रहा है और यह आज भी विद्यमान है।

अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए कवि ने महाभारत की कथा का आश्रय लिया है। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को क्रमशः तम, रज और सत के रूप में प्रस्तुत करके कवि ने विदुर के चिन्तन प्रधान, निर्विकार, न्यायप्रिय, धर्मपरायण और अन्याय विरोधी रूप को उजागर किया है। इस महाकाव्य में पहली बार विदुर के विचार को इतना अधिक विस्तार मिला है और वे ही इस ग्रन्थ के नायक हैं। जुआ खेलने के आमन्त्रण और द्रौपदी के चीरहरण के समय अन्याय का उन्होंने जिस तरह डट कर विरोध किया है तथा आगे भी जो आक्रामक भूमिका वे निभाते हैं वह पहली बार उस महाकाव्य में देखने को मिलता है। लाक्षागृह प्रसंग से लेकर कुन्ती की सेवा करने तक उनके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू, सेवा भाव एवं न्याय के समर्थक का, निखरा है।

'सत्यासत्य' में शासकों की नीति का उल्लेख करते हुए उन पर व्यंग्य किया गया है। शासक अपने विरोधी को पहले ही समाप्त करना चाहता है। दुर्योधन ने भीम को विष देकर मारना चाहा था। शासक समान के साथ ही मैत्री करता है। यही कारण है कि राजा द्रुपद अपने गुरुभाई द्रोणाचार्य द्वारा मित्र कहे जाने पर अपना अपमान मानते हैं और उन्हें पहचानने से इनकार कर देते हैं। शासकों में प्रतिशोध का भाव प्रबल होता है। द्रोणाचार्य ने ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय बल से द्रुपद को अपमानित किया प्रतिशोध स्वरूप द्रुपद ने क्षात्र धर्म छोड़ ब्राह्मण कर्म (यज्ञ) द्वारा द्रोण का नाश किया। दुर्योधन का सम्पूर्ण शासन ही छल और द्वेष पर आधारित था। शासकों के द्यूत प्रेम को अधर्म, अनैतिकता, विपत्ति, विवाद और अनर्थ की जड़ बता कर कवि ने उसका उपहास किया है। उनके राष्ट्रवाद को अनर्थ की जड़ बता कर उसके स्थान पर विश्वबन्धुत्व की भावना के विकास पर बल दिया गया है।

हृदयेश जी पूर्वी प्रदेश के साहित्यकारों के गुरु, अग्रज, संरक्षक और शुभेच्छु हैं। आज वे सत्तर से ऊपर के हो चुके हैं। इस अवस्था में भी उनके अध्ययन एवं लेखन के प्रति अबाध तत्परता का परिणाम है●●

---

1. सत्यासत्य, ले० श्रीकृष्ण राय 'हृदयेश', प्र० जनसेवा ट्रस्ट, रेणुकूट (उ०प्र०), प्र०सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 276, सजिल्द, मूल्य 40·00.

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगा[1]

बैजनाथ राय

समीक्ष्य 'गंगा' खंड काव्य कवि के 'भरत' और 'पवनतनय' प्रवन्ध काव्यों की श्रृंखला की अगली कड़ी है। कवि को इसकी भी प्रेरणा 'रामचरित मानस' से ही मिली। इस काव्य में गंगावतरण की कथा प्रधानतः राम के द्वारा ही कहलाई गयी है। शर्मा जी की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने वेद पुराणोतिहास में विखरी गंगावतरण की कथा को समायोजित कर बड़े सुव्यवस्थित ढंग से कुशलतापूर्वक अपनें काव्य में प्रस्तुत किया है।

इस काव्य में जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के 'गंगावतरण' प्रवन्ध काव्य से कुछ अधिक बात कही गयी है अथवा इसमें कोई नयी उद्भावना है, यह कहना गलत होगा। भाव, भाषा, छन्द, अलंकार, रस, गुण आदि काव्योपेक्षित घटकों की दृष्टि से 'गंगावतरण' से आगे का काव्य यह नहीं हो सका है●●

अन्तिम निर्णय[2]

महेशचन्द्र शर्मा

समीक्ष्य कृति भारत-पाक युद्ध को विषय बना कर लिखी गयी है। इसका मूल स्वर राष्ट्रीयता है। कवि ने देश-भक्ति की भावना एवं स्वस्थ राष्ट्रीय मूल्यों के प्रति अनुरक्ति को अभिव्यक्ति देने के उद्देश्य से इस कृति का प्रणयन किया है।

साहित्यिक विधा की दृष्टि से प्रस्तुत कृति 'खंडकाव्य' की कोटि में आती है। इसमें कथा का प्रवाह आद्योपान्त वर्तमान है। इसे विभिन्न तुकान्त छन्दों में लिखा गया है●●

डूबते इतिहास का गवाह : निषेध और निषेध के बाद[3]

नन्दकिशोर नवल

प्रतिक्रियात्मक निषेधवाद के प्रवर्तक जर्मन दार्शनिक नीत्शे हैं। उन्होंने 'मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन' की बात कही थी, जिसका व्यवहार में अर्थ था नैतिकता के सभी मानदंडों की अस्वीकृति। यह आकस्मिक नहीं है कि 'कविता की परिभाषा' शीर्षक अपनी कविता में जैसे नीत्शे के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए जगदीश चतुर्वेदी कहते हैं●●

---

1. गंगा, ले० राजेन्द्र शर्मा, प्र० अनुराधा प्रकाशन, 1625 द्वारकापुरी, दिल्ली, प्र० सं० 1979, आकार क्राउन, पृ०सं० 72, सजिल्द, मूल्य 8·00

2. अन्तिम निर्णय, ले० विश्रान्त वशिष्ठ, प्र० विभूति प्रकाशन, के-14, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32, प्र० सं० 1980, आकार क्राउन, पृ० सं० 93, सजिल्द, मूल्य 10·00

3. डूबते इतिहास का गवाह, ले० जगदीश चतुर्वेदी, प्र० प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नयी दिल्ली-30, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 100, सजिल्द, मूल्य 20·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप नीत्शे को कतई न पढ़ें, पागल हो जाएँगे ।
आप तो कविता को नींद की गोली मानते हैं, पर नीत्शे की
पंक्तियाँ आपको जमीन में सुराख करने की सलाह देंगी ।
आप डरिए नहीं ।······मौत की बात आपको अच्छी नहीं लगती ।
पर सच यही है मेरे दोस्त कि कविता खूनी रास्ते से आती है
और कुछ सिरफिरों के जरिए लिखी जाकर लोगों की
नींद हराम कर देती है ।

नैतिकता के सभी मानदंडों की अस्वीकृति का अनिवार्य परिणाम है विचार और आचार की अराजकता । अकविता इसी अराजकता की देन थी । इसकी गहरी छाया 'डूबते इतिहास का गवाह' के आरम्भिक दो खंडों की कविताओं में देखने को मिलती है । 'काल-चक्र' शीर्षक कविता में चतुर्वेदी जी कहते हैं : 'लोग कहते हैं सुजाक और सन्निपात खतरनाक बीमारी हैं / पर मैंने दवाई जुटाने की गलती आज तक नहीं की / दवाई के नाम पर मुहब्बत की है / और नयी नयी जगहों की तलाश अभी जारी है ।' इसी तरह 'विघटन' शीर्षक कविता में : 'मुझे केवल अविश्वसनीय लम्बी यात्रा पर निकलना है / और रास्ते में अनसुना करते हुए भूनना है / तुम्हारा यौवन, / शताब्दी का वैभव और निद्रा तथा प्यार !'

लेकिन यह समझना भूल होगी कि अकविता का कोई सामाजिक सन्दर्भ न था और वह शुद्ध जर्मनी या अमरीका से टपकी हुई चीज थी । चतुर्वेदीजी की कविताओं में एक गहरी बेचैनी और तड़प है, जो उनके भीतर स्वातन्त्र्योत्तर भारत की दशा देख कर उत्पन्न हुई है । अनेकश : कविताओं में उन्होंने इसका इजहार किया है । उदाहरणार्थ : 'सूरज यहाँ कभी नहीं उगा / केवल डरावनी रात का मुतैला उजेला / मेरे कन्धों पर आवनूसी कम्बल फेंक कर मेरी रीढ़ की हड्डी में सुराख करता रहा' ('पत्थरों के शहर में'), 'अनायास लगता है कि वर्तमान एक गहरी सुरंग में गुम हो गया है / तमाम सम्बन्ध मात्र एक गाढ़ा धुआँ थे जिनने ढँक लिया था / सारा शरीर और विचार-तन्त्र !' ('अनिर्णीत'), 'नगर मरते हैं और संस्कृतियाँ दफन होती हैं / कस्बों में उग आते हैं खलिहान / और रेतो में खो जाते हैं नखलिस्तान !' ('अकाल मृत्यु') इस दशा से उबरने की इच्छा स्वाभाविक है । वह चतुर्वेदी जी में भी भरपूर है । 'बर्बर वंशजों के नाम' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है : 'भागना चाहता हूँ इस जंगल से हर रात / इस निकृष्ट, नारकीय यन्त्रणा से होना चाहता हूँ मुक्त······ ।'

मुक्ति की आकांक्षा बहुत अच्छी चीज है, लेकिन मुक्ति केवल उसीसे नहीं मिलती । उसके लिए पहले उस यथार्थ को वस्तुपरक ढंग से समझना होता है, जिससे मुक्ति अभीष्ट है । चतुर्वेदी जी ने उस यथार्थ को बिलकुल आत्मपरक ढंग से समझा है, जिससे उन्हें परिस्थिति बिलकुल निराशाजनक लगी है । प्रमाण के लिए उनकी ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं : 'मुझे लगता है कि / तमाम देश एक पत्थर है और तमाम लोग उस पर खिंची बेतरतीब लकीरें / न उनमें कोई हरकत है, न कोई अहसास / वह सब लम्बी चट्टान पर चिपके लाश पिंड हैं ।' ('कानखजूरा') 'कोई नहीं है टूटते / आकाश के बीच साहस के साथ खड़े रहने वाला सिपह-/सालार···सब हो गये हैं जनखे या तमाशबीन या मक्कार !' ('एक लँगड़े आदमी का बयान') आदि । चतुर्वेदी जी स्वातन्त्र्योत्तर भारत के जनान्दोलनों के इतिहास पर हलकी दृष्टि भी डालेंगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो उनके सामने यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनका परिस्थिति का मूल्यांकन बिलकुल अधूरा है। व्यक्ति की मुक्ति भी सामाजिक मुक्ति में है और वह मुक्ति अकेले नहीं प्राप्त की जा सकती, इसलिए मुक्ति के लिए प्रयासरत सामाजिक शक्तियों को पहचान कर उनसे एकताबद्ध होना जरूरी है। चतुर्वेदी जी इस बात को नहीं समझते, इसलिए 'व्यक्ति संग्राम' की दुहाई देते हुए कहते हैं : 'कभी तुमने इस व्यक्तिगत संग्राम का अर्थ जाना है / कभी तुमने मेरे वक्त, बे वक्त आ जाने वाले गुस्से को पहचाना है।' ('घृणा') उन्होंने बिलकुल ठीक लिखा है, 'व्यक्तिगत संग्राम' गुस्से से आगे जा नहीं सकता, और यह जानी हुई बात है कि मात्र गुस्से से सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं है। सबूत पेश है : 'एक पहाड़ में छेद करने की इच्छा बहुत बार हुई है और / मैंने एक पैने चाकू से अपनी हथेली पर ही बार कर दिया है।' ('समकालीन आलोचकों के नाम') इस स्थिति की स्वाभाविक परिणति निराशा में होगी। इस निराशा ने चतुर्वेदी जी को अनिश्चयग्रस्त और विक्षिप्त ही नहीं बनाया है, उनके भीतर ऐसी अनास्था उत्पन्न कर दी है कि वे सारी दुनिया का ध्वंस करने को तैयार हैं : 'मैं शान्ति के अन्तिम निर्णय को पदाक्रान्त कर / अपनी मुट्ठियों में उठा लूँगा आणविक अस्त्र, / विषैले कीड़े और अणुवय !' ('शान्तिदूत')

चतुर्वेदी जी चूँकि प्रतिक्रियात्मक निषेधवाद के शिकार रहे हैं, इसलिए किसी मूल्य, किसी विचारधारा में उनकी निष्ठा नहीं है। 'एक लँगड़े आदमी का बयान' शीर्षक कविता में उन्होंने निराशा की चरम स्थिति में कहा है : 'एक कमन्द पर कूदेगा कोई गोरिल्ला और / अपने विशाल पंजों में दबा लेगा तमाम इमारतें, यन्त्र, / हवाएँ और ध्वनि यान !' फिर तो 'फटी आँखों में आवाजें रह जाएँगी कैद और मानवता का केवल / इतिहास में शेष रहेगा नाम……।' यह गोरिल्ला कौन है ? यह कम्युनिज्म है, जिसे चतुर्वेदी जी बिलकुल मानव-विरोधी चीज मानकर जोरदार ढंग से रद्द करते हैं। 'डूबते इतिहास का गवाह' शीर्षक कविता में उन्होंने कहा है : 'यह एक अन्धी / नियति है और इसकी आँखों पर एक लाल कपड़ा / बँधा है गर्दन में टँगे हैं हो ची मिन्ह के चित्र।' ताज्जुब नहीं, यदि इस निषेधवाद को पकड़ कर चलने वाले कवि को असफलता हाथ लगी। उसने बड़ी ईमानदारी से संग्रह की पहली ही कविता 'मन्तव्य' की पहली ही पंक्ति में कहा है : 'विवेकशून्य होकर एक युद्ध मैंने किया और हार गया।'

अपनी भूल को अनुभव करने का ही यह परिणाम हुआ है कि चतुर्वेदी जी ने पुस्तक के बाद के दो खंडों की कविताओं में अकविता और उसके निषेधवाद से मुक्त होने का प्रयास किया है। इनमें उन्होंने शान्ति, धर्मनिरपेक्षता, जनतन्त्र, प्रेम आदि मूल्यों में अपनी आस्था आरोपित की है। यह इस बात का सूचक है कि कवि देश-दशा को समझने और उससे अपने को जोड़ने का बेहतर ढंग से प्रयास कर रहा है। चतुर्वेदी जी की कविता में वक्तव्य की प्रधानता है। जहाँ वह वक्तव्य बिम्बों या स्वप्न-बिम्बों से युक्त हो जाता है वहाँ उसका प्रभाव बढ़ जाता है। अकविता से हट कर लिखी गयी कविताओं को देखने से ऐसा लगता है कि वे अपने लिए अब नयी शैली तलाश रहे हैं। यथार्थ को वे जितने अच्छे ढंग से समझेंगे, शैली की उनकी यह तलाश उतनी ही कारगर होगी ●●

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धुएँ का सच[1]

अमरनाथ सिन्हा

समीक्ष्य कविता-संग्रह कुसुम अंसल की अट्ठावन छोटी बड़ी कविताओं का भावान्वित संकलन है; संकलन इसलिए कि ये मुक्तक हैं और भावान्वित इसलिए कि इनका नाभिक है 'प्रीति'।

संग्रह के शीर्षक 'धुएँ का सच' से जो प्रतिमास उभरता है, संग्रह का मुकम्मल स्थापत्य भी लगभग वही है। 'धुएँ का सच' के प्रतिभास का वर्णक्रम व्यंशभूत होता है—तल में तपिश, मध्य में धुँधलापन और घुटन तथा उसके ऊपर प्राणवन्त ताजगी। अब यह तो आदमी पर निर्भर है कि वह वर्णक्रम के किस अंश में जीता या मर खप जाता है। रचनाकार 'धुएँ के सच' के किसी अंशविशेष तक चुक जाने को तैयार नहीं, वह उसे 'मुकम्मल जिन्दगी' का प्रतिभास मान और जान कर ग्रहण करती है। कवयित्री ने 'धुएँ के सच' को इसी 'मुकम्मल जिन्दगी' का पर्याय मान कर और जान कर 'प्रीति' नाभिक के इर्दगिर्द काव्य-सर्जना की है। इस दृष्टि से संकलित कविताओं के वर्णक्रम के स्पष्टतः तीन स्तर हैं—जिन्दगी की तपिश की कविताएँ, धुँधलेपन और घुटन की कविताएँ तथा प्राणवन्त ताजगी अथवा जिजीविषा की कविताएँ।

'एकात्म' शीर्षक कविता पूरे संग्रह की धुरी है। खुदी को खुदा बनाना या स्व को व्यक्त करना हमेशा कठिन होता है। प्रेम या प्रीति आम एवं आदिम मानवीय अनुभूति है, माना; लेकिन वह निहायत निजी ऐकान्तिक अपना वर्तमान भी है जिसे सिर्फ संयोग और वियोग की शास्त्रीयता में बाँटा तो जा सकता है, भोगा या जीया नहीं जा सकता। कुसुम अंसल इस निहायत निजीपन को व्यक्त करना चाहती हैं तो वह 'धुएँ के सच' का वर्णक्रम लेकर उभरता है—मैं तो अब / और कुछ नहीं / तुम से जुड़ी / तुम्हें ही सोचती / तुममें ही तुम्हें खोजती / तुम्हारे दैहिक भौतिक / सुख दुख / में लिप्त, एक / जलती, बुझती / लाचार सी चिन्गारी हूँ / जिसे यह संसार / कितना भी आँधी बन / राख में बदले / पर जो जिद पर चढ़ी / भीतर से कहीं / मद्धिम मद्धिम ही सही / पर गहराई तक / तुम्हारे प्रकाश की खातिर / चुपचाप चलती है। (पृ० 80-81)

'धुएँ का सच', 'छोटी सी बात', 'ताप', 'खंडहर तक की यात्रा', 'अल्पज्ञता', 'स्मृतियाँ' आदि 'तपिश' की कविताएँ हैं, 'मैं जीना चाहती हूँ', 'जीवन तुम हकदार हो', 'यह अकारण मौत', 'मृत्युबोध', 'जहर' आदि धुँधलेपन और घुटन की; और 'तुम छू गये', 'एक नीली सुबह', 'तुम उस पार', 'मन', 'व्यक्तित्व' आदि जिजीविषा की। कुसुम अंसल की इन कविताओं की गहराई और उड़ान किसी दार्शनिक चिन्तन का परिणाम नहीं, ये अनुभूत दशा के वर्णन हैं, ऐकान्तिक निजी और सहज। निरायास शब्दविधान की ये कविताएँ सातिशय अभिधा के कारण पाठक के अन्तस् में भी हल्की तपिश, घुटन एवं ताजगी का एहसास जगाती हैं—मुट्ठी में बन्द थी / कपूर सी उड़ गयी / नेह की घड़ियाँ थीं / और कुछ नहीं थी / बाती सी बटती थी / मन्दिर में धरती थी / स्मृतियाँ, वह / दीपक सी जलती थीं / धुएँ में बदलती थीं / तुम तक पहुँची क्या ?' (पृ० 25) कुसुम अंसल ने अपनी कविताओं को 'अपने से अपने बीच, मन और जीवन के बीच' निरन्तर संवाद कहा है, पाठक के लिए उनका यह 'संवाद' मनःसंवाद बन जाता है, यही उनकी सफलता है●●

---

1. धुएँ का सच, ले० कुसुम अंसल, प्र० अभिव्यंजना, 4/5 बी, आसफ अली रोड, नयी दिल्ली, प्र० सं० 1980, आकार डिमाई, पृ० सं० 87, सजिल्द, मूल्य 25·00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिस्कोमान

राज्य के किसानों की समृद्धि के लिए बिस्कोमान के

पाँच बड़े कदम

1. रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक दवा की बिक्री।
2. धान, गेहूँ एवं मकई आदि—हर प्रकार के बीजों की आपूर्त्ति।
3. मिश्रित दानेदार खाद हराबहार (18 : 18 : 6) की आपूर्ति।
4. पशुओं के लिए संतुलित आहार कामधेनु की आपूर्त्ति।
5. पटसन, मसूर, खेसारी, आलू आदि कृषि पदार्थों की खरीद के द्वारा कृषकों का संरक्षण।

कृपया बिस्कोमान के डिपो से सम्पर्क कर सुलभ दर पर उपर्युक्त वस्तुएँ क्रय करें और हरित क्रान्ति को सफल बनावें।

एन० सी० नारायण, भा० प्र० से०
प्रबन्धक निदेशक।

तपेश्वर सिंह
संसद सदस्य, अध्यक्ष।

बिहार राज्य सहयोग क्रय विक्रय संघ सीमित

पटना—800001

समकालीन हिन्दी कविता

विश्वनाथप्रसाद तिवारी की विशिष्ट आलोचना कृति, जो समकालीन हिन्दी कविता की पड़ताल करती हुई एक रचना जैसी ही लगेगी। अलग-अलग कवियों के काव्य संस्कारों, उनकी दृष्टियों और काव्यचिन्ताओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने वाली यह कृति समकालीन हिन्दी कविता के मनःलोक की पहचान के लिए जरूरी कृति है।

राजकमल प्रकाशन

8, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-1.0002

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिहार राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड

द्वारा

संचालित २० ग्रामोद्योग

ग्रामीण आर्थिक समृद्धि के सफल साधन

खादी, ग्रामीण तेल, अनाज प्रशोधन, गुड़-खांडसारी, हाथ काग़ज, ताड़ गुड़, चर्मोद्योग, कुम्भकारी, रेशा, लोहारगिरी-बढ़ईगिरी, मधुमक्खीपालन, चूना, दियासलाई, अखाद्य तेल एवं साबुन, लाह निर्माण, जंगली जड़ी-बूटी, फल-संरक्षण, बेंत-बाँस, गोंद-कत्था तथा गोबर गैस जैसे उद्योगों को चलाकर आत्म निर्भरता एवं समुचित आय प्राप्त कीजिये। गोबर गैस प्लान्ट रोशनी, जलावन और खाद प्राप्त करने का उत्तम साधन है। गोबर गैस प्लान्ट लगाइये और रोशनी, जलावन, खाद तीनों पाइये।

बोर्ड के माध्यम से ऋण, तकनीकी एवं उद्योगों के प्रशिक्षण की सुविधा प्राप्त कीजिये।

हमारे भवनों एवं भण्डारों से आकर्षक खादी के सूती, रेशमी एवं ऊनी वस्त्र, खिलौने, चन्दन की वस्तुएँ, चर्मोद्योग के सामान तथा अन्य ग्रामोद्योगी उत्पादनों को खरीदकर ग्रामीण कामगारों की आर्थिक उन्नति में सहायता कीजिये।

विशेष जानकारी के लिए
अपने जिला के जिला खादी ग्रामोद्योग पदाधिकारी से
सम्पर्क करें

ह० चन्द्रधर झा
मुख्य कार्यपालक पदाधिकारी

ह० कैप्टन मो० शाहजहाँ (स०वि०स०)
अध्यक्ष

बिहार राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड द्वारा प्रचारित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिहार स्टेट हैण्डलूम एण्ड हैण्डीक्राफ्ट्स कारपोरेशन लि०, उद्योग भवन, पटना

हस्तकरघा और हस्तशिल्प की प्राचीन कला द्वारा भगवान बुद्ध की भूमि को प्रभासित करता है।

कैसे ?

- ☐ हम हस्तकरघा वस्त्रों के उत्पादन के लिए बुनकरों को धागों की आपूर्ति करते हैं और अपने क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा उत्पादन स्थल पर ही उनकी मजदूरी का नगद भुगतान कर उनकी उत्पादित वस्तुओं को ले लेते हैं।
- ☐ इस प्रकार हमने 13,800 करघों पर कार्यरत 25,740 बुनकरों को रोजगार का अवसर प्रदान किया है।
- ☐ हम शिल्पियों से उनकी उत्पादित हस्तशिल्प सामग्रियाँ उनके विपणन के लिए खरीदते हैं।
- ☐ हम आपकी सेवा में आकर्षक डिजाइनों में सभी प्रकार के हस्तकरघा वस्त्र उपलब्ध कराते हैं, जैसे :—

  (1) बेडशीट, (2) लुंगी, (3) तौलिया, (4) शर्टिंग, शिल्क के कपड़े, (5) फर्निशिंग वस्तुएँ, (6) धोती, (7) सिल्क और हैण्डलूम की साड़ियाँ।

गरीबों के लिए विशेष आकर्षण :

(1) जनता धोती—रु० 10·05 प्रति खंड की दर से
(2) जनता साड़ी—रु० 10·56 प्रति खंड की दर से
और हस्तशिल्प की वस्तुएँ, जैसे :—
(1) प्रसिद्ध मधुबनी लोकचित्र, (2) सिक्की, (3) बेंत और बाँस की बनी वस्तुएँ, (4) ऊनी कालीन, (5) पत्थर के वर्त्तन, (6) खिलौने आदि

आप ये वस्तुएँ हमारें निम्न विक्री केन्द्रों से खरीद सकते हैं :

(1) पटना, (2) गया, (3) आरा, (4) राजगीर, (5) दरभंगा, (6) मुजफ्फरपुर, (7) बेतिया, (8) जमशेदपुर, (9) राँची, (10) झरिया, (11) बेगुसराय, (12) बेकारो, (13) पटना हवाई अड्डा, (14) जमुई (मुंगेर), (15) निर्मली, (16) सुपौल, (17) हाजीपुर

फेज अक्रम	तालीब अन्सारी	विश्वनाथ गुरमैता
प्रबन्ध निदेशक	उपाध्यक्ष	अध्यक्ष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आज भारत में

दो करोड़ अस्सी लाख

दम्पति ने

परिवार नियोजन

अपनाया है और

उनका जीवन बेहतर है

अगर आप भी उनमें मे एक हैं तो अपने पड़ोसियों को बताइए यदि नहीं तो फिर देर कैसी

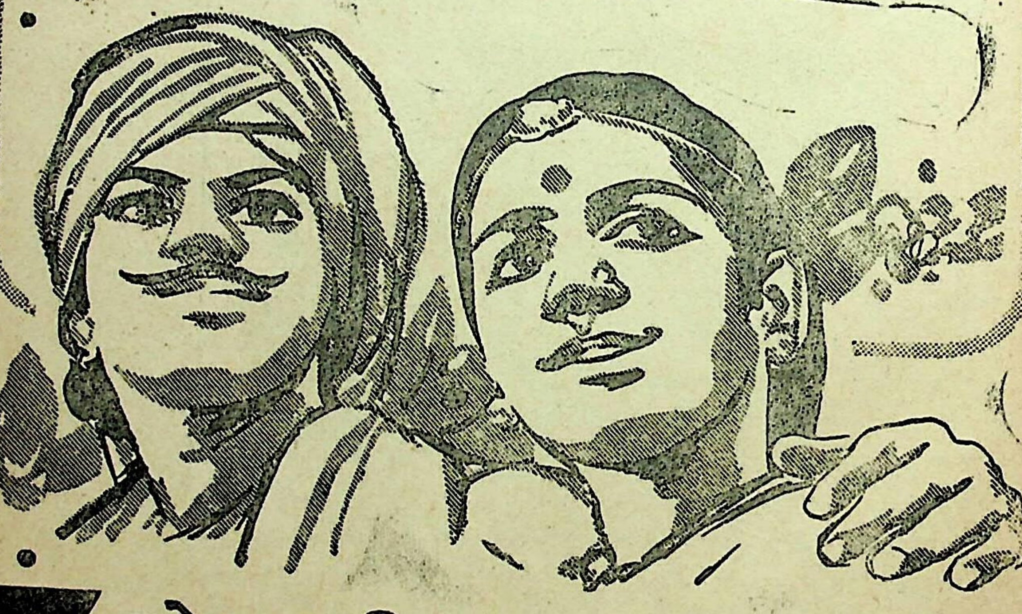

छोटा परिवार सुखी परिवार

डी.ए.वी.पी 81/169

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बिहार राज्य सहकारिता बैंक लिमिटेड

के अति लाभकारी एवं

अर्थोत्पादक 'स्थायी पेन्शन योजना' के अन्तर्गत

अपनी बचत जमा कर लाभ उठावें

☐ कोई भी व्यक्ति 84 महीने के लिए प्रत्येक महीने 10/- रुपये अथवा तत्सम्बन्धी अपवर्त्य जमा कर सकते हैं एवं बैंक के नियमों के अधीन जब तक वह व्यक्ति लेखा जारी रखना चाहे 86 महीने/122 महीने से रुपये 10·40 पैसे/रुपये 181·00 का उच्चतर मासिक पेंशन प्राप्त कर सकते हैं।

(ए) 10·25 प्रतिशत ब्याज मूलधन के साथ संचित है तथा चतुर्थ अन्तराल पर संयोजन द्वारा भी ब्याज परिलब्ध।

☐ भविष्य में उच्चतर ब्याज-दर के लाभ की प्राप्ति हेतु हमारी योजनाओं में किसी को चयन करें। यदि और जब, पेंशन विरमित कर दिया जाता है, योजना के अधीन जमाकर्त्ता को भुगतान की जाने वाली मासिक पेंसन और मूलधन की राशि निम्नांकित तालिका में निर्दिष्ट की गयी है :—

मासिक जमा	महीनों में अवधि	86 वीं महीने से मासिक पेन्सन	बैंक के नियमानुसार लेखा के बन्द होने के समय देय एक मुस्त राशि
योजना—1			
10/-रुपये	84	10·40	1,259·30
20/-रुपये	84	20·80	2,518·60
30/-रुपये	8	31·20	3,777·90
40/-रुपये	84	41·60	5,037·20
50/-रुपये	84	52·00	6,296·50
100/-रुपये	84	104·00	12,593·00
योजना—2			
10/-रुपये	120/-	18·10	2,130 00
20/-रुपये	120/-	36·20	4,260·00
30/-रुपये	120/-	54·30	6,390·00
40/-रुपये	120/-	72·40	8,520 00
50/-रुपये	120/-	90·50	10,650·00
100/-रुपये	120/-	181·00	21,300·00

पटना स्थित बांकीपुर, नया सचिवालय, न्यू मार्केट, मुसल्लहपुर हाट, फंकड़बाग; जमशेदपुर स्थित बिस्टुपुर, गोलमुरी, टेल्को तथा बरौनी स्थित बीहट में हमारी निकटतम शाखाओं से सम्पर्क करें।

आपकी सेवा में अप्रतिहत कार्यरत

बिहार राज्य सहकारिता बैंक लि०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भारतीय ज्ञानपीठ
के
श्रेष्ठ नवीन प्रकाशन

कथा एक प्रान्तर की : एस० के० पोट्टेक्काट

'कथा एक प्रान्तर की' कहानी है केरल के एक गाँव के छोर पर बसे व्यक्तियों की, उनके समाज और जीवन की; यह पचास वर्ष के बदलते परिवेश का गद्यात्मक महाकाव्य है जिसमें पूरा वातावरण मुखर है; जिसकी सैकड़ों घटनाओं के असंख्य पात्र अपनी अदम्य जीवन-शक्ति को अलग अलग पहचान कराते हैं। ज्ञानपीठ का एक गौरव ग्रन्थ; ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित। मूल्य : 50·00

मृत्युंजय : वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में असम की भूमिका पर प्रस्तुत एक श्रेष्ठ औपन्यासिक रचना। इसमें विद्रोही जनता का मानस और उसके ऊहापोहों के चित्रण के साथ ही साथ आरम्भ से अन्त तक प्रवहमान रहता है, ब्रिटिश शासन का प्रतिकार करने वाले नवयुवक धनपुर और आदिवासी युवती डिमी का अव्यक्त किन्तु प्रबल प्रेम।···भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित कृति। मूल्य : 30·00

अमृता : रघुवीर चौधरी

आधुनिक संवेदना का प्रतीक यह उपन्यास गुजराती में आलोचकों द्वारा खूब सराहा गया है। महायुद्ध के बाद की अन्तर्बाह्य परिस्थितियों को अस्तित्ववाद और भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में देख परख कर लेखक ने प्रस्तुत रचना के माध्यम से अभिव्यक्ति की एक नयी राह खोजी है। मूल्य : 35·00

शब्दों के पींजरे में : असीम राय

आज के युग के जीवन की यन्त्रणा को जिन कुछ साहित्यकारों ने अपने में झेला है और दायित्व-बोध पूर्वक उसे अभिव्यंजित किया है, ऐसे ही एक अप्रतिम लेखक की रचना है यह उपन्यास। पींजरा बाँस की तीलियों का हो चाहे फौलादी छड़ों का, होगा पींजरा ही; किन्तु कहीं भयानक हैं पींजरे शब्दों के : जो थे जीवन-विकास के दिशा-संकेत पर बन रहे दुर्दम पींजरे शब्दों के, जिनमें चिर वन्दी है जन-जन की विवेक-बुद्धि, भावना, चेतना। मूल्य : 20·00

छिन्न पत्र : सुरेश जोशी

जीवन का एक मर्म और साहित्य का एक शाश्वत विषय रहा है प्रेम। प्रस्तुत कथा प्रेम-प्रगीति भी है और उपन्यास भी। अन्तर इतना कि यहाँ सारा मनो-मन्थन गोधूलि के गीत-सा उठता हुआ अन्तिम स्वर की गूँज तक बिखरता जाता है। मूल्य : 12·00

गँवई गन्ध गुलाब : विवेकी राय

सच तो, ये कथात्मक रेखाचित्र हैं, और उतनी ही काव्यात्मक रसमयता भी इनमें है जितनी गन्धमयता शीर्षक से व्यंजित है। यही कारण है कि इन रेखाचित्रों में कोई नहीं जो अपनी किसी-न-किसी विशेषता के कारण मन पर रेखाएँ न छोड़ जाये। मूल्य : 15·00

भारतीय ज्ञानपीठ

बी-४५/४७ कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली-११०००१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्दकार की नवीनतम प्रकाशन उपलब्धियाँ

(1981-82)

उपन्यास

दारुल शफ़ा	:	राजकृष्ण मिश्र	45·00
वंश वृक्ष (द्वितीय संस्करण)	:	भैरप्पा	40·00
बीते कल की छाया	:	श्रीचन्द्र अग्निहोत्री	22·00
पहाड़ी जीव	:	शिवराम कारन्त	18·00
छोटी मलकिन	:	शारदा राव	16·00
कोई तो	:	विष्णु प्रभाकर	30·00
वही बात	:	कमलेश्वर	10·00
गोधूलि	:	भैरप्पा	30·00
ऐवाने ग़ज़ल	:	जीलानी बानो	35·00
सोमाचरित	:	रमेशचन्द्र सिन्हा	20·00
घायल और बौने फूल	:	रांगेय राघव	15·00

नाटक

शोकचक्र	:	आद्य रंगाचार्य	10·00
रंगभारत	:	आद्य रंगाचार्य	10·00
स्वर्ग के तीन ही द्वार	:	आद्य रंगाचार्य	10·00
ख्याल भारमली	:	हमीदुल्ला	10·00

आलोचना

नाट्य परिवेश	:	कन्हैयालाल नन्दन	50·00

विविध

कार्यालयी अनुवाद की समस्याएँ	:	डा० भोलानाथ तिवारी डा० कृष्णकुमार गोस्वामी अजीतलाल गुलाटी	40·00

शब्दकार

2203, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हिन्दी साहित्याब्दकोश : १९७९

सं० डा० गोपाल

मूल्य : ४५·००

प्रकाशित

('साहित्याब्दकोश' में प्रत्येक वर्ष में प्रकाशित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षाओं तथा समस्त प्रकाशित पुस्तकों की प्रामाणिक सूचनाओं के अतिरिक्त वर्ष विशेष की साहित्य-विधाओं पर सर्वेक्षणात्मक लेख भी रहते हैं। प्राध्यापकों, आलोचकों, ग्रन्थपालों तथा हिन्दी साहित्य के सामान्य जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ।)

'हिन्दी साहित्याब्दकोश' के प्रकाशित खंड

हिन्दी साहित्याब्दकोश	१९६७	:	अप्राप्य
,,	१९६८	:	२५·००
,,	१९६९	:	२५·००
,,	१९७०	:	२५·००
,,	१९७१	:	२५·००
,,	१९७२	:	२५·००
,,	१९७३	:	३०·००
,,	१९७४	:	३०·००
,,	१९७५	:	३०·००
,,	१९७६	:	३५·००
,,	१९७७	:	४०·००
,,	१९७८		४५·००

सम्पर्क

ग्रन्थ निकेतन

८७/२४ राजेन्द्र नगर, पटना–८०००१६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection